वर्ष चौथा] श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड चौथा

श्री

स्वामी रामतीर्थ

उनके सदुपदेश–भाग २२।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण } —:*:— { अगस्त १९२३
प्रति २००० } { श्रावण १९८०

फुटकर

बिना जिल्द ॥=) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द ॥।=)

विषय सूची ।

के सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
ग्लो ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी ।

सहायता स्वीकार।

राम प्रेमियों को यह समाचार देते हर्ष होता है कि धर्म मूर्त्ति श्रीमान् ठाकुर दौलत सिंह जी महाराजा लिम्बड़ी (काठियावाड़ प्रांत) ने ब्रह्म लीन परम हंस स्वामी राम तीर्थ जी महाराज के पट्ट-शिष्य श्रीमान् स्वामी नारायण तीर्थ जी कृत गीता व्याख्या के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनार्थ १०००) रु० का दान लीग को भेजा है जो धन्यवाद के साथ लीग के अधिकारीजन स्वीकार करते हैं। श्री स्वामी नारायण जी महाराज गत मास में गीता की व्याख्या एकान्त में लिखने को रियासत कोट् (मध्य प्रान्त C. I.) में गये थे, वहां के राम प्यारों ने स्वामी जी के चरणों में कुछ रुपये भेंट किये थे। मार्ग व्यय के बाद जो १५०) रुपया बचे, वह भी स्वामी जी महाराज ने गीता व्याख्या के प्रकाशनार्थ लीग को भेंट कर दिये। एक सज्जन विद्यार्थी ने अति उदारता से ५) रुपये लीग को दान दिये जो अति धन्यवाद के साथ स्वीकार किये जाते हैं। यदि उदार चित राम प्यारे ऐसे ही सहायता लगातार भेजते रहे तो गीता व्याख्या के १२ अध्याय जो लगभग १००० पृष्ठ में समाप्त होंगे शीघ्र एक ही दम प्रकाशित हो जायेंगे। अन्यथा दूसरा पदक अर्थात् अध्याय ७ से १२ तक ही एक वर्ष में प्रकाशित हो सकेगा।

मन्त्री

निवेदन।

ग्राहकों को यह देख कर प्रसन्नता होगी कि इस बार यह बाइसवाँ भाग उन की सेवा में यथा समय भेजा जा रहा है। यदि राम भगवान की इसी प्रकार कृपा रही तो आगे भी यथा समय भाग भेजने की पूर्ण आशा है, परन्तु जहाँ लीग के कार्य्य कर्ता स्वार्थ रहित हुए तन मन से इन उपदेशों को वर्तमान रूप में आप तक पहुँचाने में लगे रहते हैं, वहाँ राम प्रेमियों का भी विशेष कर्तव्य है कि ग्राहक संख्या निरन्तर बढ़ा बढ़ा कर लीग के कार्य्य-कर्ताओं के उत्साह को दिन दुगना और रात चौगुना बढ़ावें। राम के उपदेश रूपी अमृत को स्वयं पान कर लेना और औरों को न चखाना केवल स्वार्थता होगी। इस कारण आप से प्रार्थना है कि तन मन धन से इन उपदेशों का प्रचार स्वयं कीजिए और दूसरों से कराइये।

गीता के पाठक यह पढ़कर प्रसन्न होंगे कि श्री मान् नारायण स्वामी कृत गीता व्याख्या के दूसरे पट्क के प्रकाशनार्थ कागज खरीद लिया गया है और प्रेस में नया टाइप आने पर शीघ्र इसे दे दिया जायगा। अंग्रेज़ी रामवर्क्स की तीसरी जिल्द In Goods of God Realisation Vol. III प्रायः समाप्त हो गई थी अब उसे भी प्रेस में दे दिया है।

पर इस सब में राम प्यारों की निरन्तर सहायता की ज़रूरत है। ईश्वर राम प्यारों को इस योग्य करे कि वह इस धर्म-कार्य्य में अटल उत्साह से सहायता देते रहें।

मंत्री।

The following have been received from Messrs Ganesh & Co., Madras for sale.

(1) New Asia. (by Paul Richard) ... Price As. 4

"Paul Richard is one of the foremost living Philosophers of the World. He is the master of epigrammatical utterance. Some of his sayings are classic and are bound to pass into the intellectual currency of the human race."—
Vedic Magazine.

(2) The Scourge of Christ. ... Price Rs. 3.

It is a deeply delightful book, full of rich suggestions and surprises. I keep it on my table and open it at any page at any time that I can spare and I am always rewarded."—
Rabindranath Tagore.

(3) To The Nations. ... ... Price Re. 1-8.

(Second Edition, translated by Sri Aurobindo Ghose. With an Introduction by Rabindranath Tagore.)

This book by a Frenchman with true spiritual vision, lays bare the causes of war in all ages, and enunciates the doctrine that lasting peace can only be found in the free dedication by all nations of all their powers to the service of Humanity.

(4) To India: ... ... Price As. 8.

The Message of the Himalayas.

In this brief message to India with its suggestive sub-title Monsieur Richard, with his characteristic power and splendour of phrase, envisages India's future as the spiritual leader of Humanity.

(5) Sri Krishna. (by Prof Vaswani)... Price Re. 1.

The merit of the author in recounting the old Hindu doctrines of the Divinity of Man, the ends of practice, law of suffering and others consists in the application of them to solve the present political deadlock.

(6) Motherland. .. ... Price Re 1-8.

It is a collection of essays on various topics of current interest. These essays will, the publishers hope, help to a better appreciation of all that is involved in the national awakening.

(7) Atmagnan. (or life in the spirit) ... Price Re. 1-8

The author discloses in this book the philosophical secret of his thought and action.

(8) Krishna's Flute ... ... Price Re 1-8.

It has a message for the nations. At this hour when Bureaucracy has hurled against the nation a policy of force, when some of the noblest of India's sons are in chains, when young men are pressing forward to the prison—house as to a place of Pilgrimage, at this hour young men will find strength in the message of the Master's Flute.

(9) My Motherland Series ... ... Price Re. 1.

In this Series the author, T. L. Vaswani interprets aspects of the Spirit of India as reflected in her culture and civilization and in the lives of the saints and sages and heroes of her history.

(A) THE ARYAN IDEAL Price Re. 1.
(B) BIRTH RIGHT. Price Re. 1.

(10) Work and Worship by James H. Cousins.

... Price Rs. 2

The author shows that culture is not a matter of luxury confined to the few, but is a necessity for the many. It imposes restraint on the destructive tendencies of unchecked growth, and through this restraint raises humanity to higher degrees of consciousness and action.

(11) Ode to Truth ... ... Price As. 8

"It is a really fine piece of work and should find a place among books often taken down for inspiration when the battle is hard and victory seems far off."—*New India.*

(12) Surya-Gita (or Sun songs) ... Price Rs. 2.

This new volume of 160 pages will give lovers of poetry an impressive idea of the amount and variety of Cousins' recent poetry.

(13) The Renaissance in India. ... Price Rs. 2.

"An intensely absorbing book which every Indian should read."—*The Hindu.*

(14) The King's Wife (The Story of Mirabai).

... Price Re. 1.

We do not hesitate to compare "The King's Wife" with the dramatic productions of our Poet Laureate, Sir Rabindranath, in point of simplicity, and beauty of form.—*New India.*

(15) Indian Home Rule (Hind Swaraj). ...Price As. 6

(5th Edn.)

A refutation of the doctrine of violence is, in the present situation of the affairs of our

country, more necessary than ever. To this end nothing better can be conceived than the publication of Mr. Gandhi's famous book.

(16) Mahatma Gandh ... ... Price Rs. 2.

His life, Writings and Speeches with a foreword by *Mrs. Sarojini Naidu.* Third edition. Tastefully bound. *Price Rs.* 2.

(17) Short Stories. ... ... Price Rs. 2.

Social and Historical by Mrs. Ghosal (Srimati Swarna Kumari Debi) sister of Rabindra Nath Tagore, with 9 illustrations bound in cloth.

(18) The Dawn over Asia. Price Re. 1-8.

Translated from the French by Aurobindo Ghose. The author's main purpose is the awakening of Asia, the freedom and unity of Asia, the new civilization of Asia, as a step towards the realisation of the greatest possibilities of the human race and the evolution of the superman.

(19) The Eternal Wisdom. Price Rs. 2.

The best thoughts of the best religions, the most inspiring sayings of great authors, have been culled and grouped together under appropriate headings.

(20) Messages from the future. Price Re 1-8.

Monsieur Richard hears the inner Voice of the Inevitable, and translates its Message in this book as it concerns India to-day. He sees her destiny as "a divine nation" with the "throne of the Lord of the Nations at the centre of her life."

(21) Indian Nation Builders Parts I. II. III. Rs 1-8 each

(22) The Great Trial of Mahatma Gandhi. As. 4.

श्री स्वामी रामतीर्थ एम. ए.

लखनऊ. १९०५
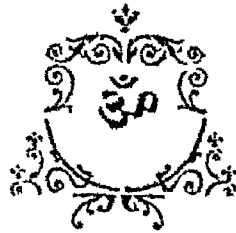
स्वामी रामतीर्थ ।

मनुष्य का भ्रातृत्व ।

१५ फरवरी १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान ।

व्याख्यान प्रारम्भ करने के पूर्व आपके लिए यह बेहतर होगा कि मानव जाति के ऐक्यभाव पर, हरेक और सबकी अभिन्नता पर, मनुष्य के भ्रातृत्व पर अपने मनों को एकाग्र करें। ज़रा महसूस कीजिए, भान कीजिए, अनुभव कीजिए।

ॐ ।

यदि यह केवल अनुमानात्मक ही बातचीत होती तो इसे सुनने में लगभग एक घंटा लगाने के योग्य यह न होती। इसे एक अमली मामला बना देना चाहिए जो वस्तुतः तुम्हें आध्यात्मिक सुख दे सके। अरे! जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में सब लोग मेरे आत्मा हैं तब कितना हर्ष होता

है। यह संगीत जो मैं ने सुना मेरा था। अरे! कितना सुख होता है जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में जो लोग अति समृद्ध हैं और जो अत्यन्त सर्व-प्रिय हैं, वे मैं हूँ। कितना सुख इस से मिलता है! यह अनुभव करने की चेष्टा करो और तुम्हें अपने अभ्यास में इसके स्वाभाविक फल दिखाई पड़ेंगे। जैसे तुम यह समझते हो कि यह एक शरीर तुम्हारा है, उसी तरह समझना और अनुभव करना शुरू करो कि सब शरीर तुम्हारे हैं। और जब तुम ऐसा समझना शुरू करते हो तब तुम लखोगे कि ठीक जैसे यह शरीर, जिसे तुम अपना कहते हो, तुम्हारी इच्छाओं और आज्ञाओं का पालन करता है, जिस तरह तुम्हारी इच्छानुसार, तुम्हारी मर्ज़ी पर पैर चलना शुरू करते हैं, तुम्हारे आदेश पर हाथ चलने लगते हैं; जिस तरह पर तुम अपने शरीर में यह (अपनी आज्ञा का पालन) देखते हो, उसी प्रकार यह अनुभव की बात है, इस तथ्य का अनुभव किया जा सकता है, यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है कि यदि तुम एकता (अभिन्नता) के इस सत्य पर अपने मन और शक्तियों को एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि इस दुनिया में सब शरीर ठीक तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार बर्तना और चलना फिरना शुरू कर देंगे। यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है इस में विश्वास कीजिए, इसकी जांच कीजिए। यह अनुमान का मामला नहीं है, यह ख़ाली बातचीत नहीं है, यह उतना ही अधिक तथ्य है जितना अपने इस शरीर को तुम तथ्य कहते हो। यद्यपि यह सर्वथा तत्व है, फिर भी तर्क के लिए इसे अव्यावहारिक मान लेने पर, मनुष्यमात्र की एकता के इस अनुभव से एक सुख तुम्हें अपने भाग में आता तुरन्त दिखाई पड़ेगा। ये लोग धन के लिए उदास और चिन्तित क्यों होते हैं?

वे चाहते हैं कि बाग़ हमारे हों, वे घास के मैदानों को अपने कहना चाहते हैं। कैसा मलिन विचार है! क्या तुम यहां के धनी लोगों के बाग़ों में, सार्वजनिक बाग़ों में नहीं जा सकते, और वहां घंटों बैठ कर उन बग़ीचों का आनन्द ठीक उसी तरह नहीं लूट सकते जिस तरह पर वह भद्रपुरुष उसका आनन्द लूटता है जो उस बग़ीचे को अपना ही कहता है? उस बग़ीचे को जो भद्र पुरुष अपना कहता है क्या वह कभी उन सब फूलों और फलों को चार आँखों से देख सकता है? क्या वे बाग़, फूल, हरी-भरी पत्तियां और वे सारे फल तुम्हारी ही जैसी दो आँखोंके द्वारा उसे सुलभ नहीं हैं? बाग़ में कोकिलों और पक्षियों का गान वह भी उसी तरह के दो कानों से सुनता है जैसे तुम। तो फिर उस बाग़ के अधिकारी होने की मूर्खता-पूर्ण इच्छा के लिए क्यों हैरान और परेशान होते हो? हाँ राम चाहता है कि दुनिया के सब बाग़ों को तुम अपने ही समझो। राम चाहता है कि मनुष्य के सब शरीरों को तुम अपने ही शरीर समझो और अनुभव करो। अनुभव करो कि सब प्रभाव-शालिनी शक्तियां और विशिष्ट मन तुम्हारे ही हैं। यह ऐसी कल्पना नहीं है जिसे तुम अस्वाभाविक या क्लिष्ट कह सको। जीवन के उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए क्या तुम्हें अनेक गुणों की साधना नहीं करना पड़ती? वे तुम्हारे लिए उपयोगी हैं, किन्तु सत्यों के इस सत्य पर, कि सब एक हैं, सब शरीर तुम्हारे हैं, इस तत्व (परमार्थ) पर अपनी शक्तियों को एकाग्र करना और अपने विचारों को केन्द्रित करना सब से बढ़कर उपयोगी तुम्हारे लिए होगा। इस सत्य पर, इस परम तत्व पर अपने विचारों को केन्द्रित करो, अपनी शक्तियों को एकाग्र करो। महसूस करो, भान करो, अनुभव करो कि सब

तुम्हारे शरीर हैं। सड़क पर जाते हुए जब किसी मनुष्य को तुम देखो, जो प्रतिष्ठित हो,—मान लीजिए, इँग्लैंड का सम्राट, रूसका ज़ार (Czar), अमेरिका का राष्ट्रपति,—तो किसी, तरह के डाह या भय का विचार अपने मन में न आने दो। बस राजकीय चितवन (gaze) को अपनी ही दृष्टि के समान सुख से भोगो, उसे अपनी ही (चितवन) समझो, "मैं वह हूँ, अन्य कोई नहीं"। जब तुम ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करोगे तब तुम्हारा अपना अनुभव यह सत्य सिद्ध कर देगा कि सब एक हैं, प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे कान, नेत्र, पैर, तुम्हारा अपना शरीर हो जायगा। मनुष्य का भ्रातृत्व! तर्क शास्त्र इसे चाहे सिद्ध कर सके या न कर सके, विज्ञान इसे सिद्ध कर सके या नहीं, दर्शन शास्त्र इसे प्रमाणित करने में समर्थ हो या असमर्थ, किन्तु है यह एक तथ्य, जिस तथ्य को अनुभव सिद्ध करता है।

ॐ

अच्छा, राम अब तुम्हें कुछ युक्तियाँ बतावेगा, जिनसे यह सत्य, मनुष्य का भ्रातृत्व स्थापित होगा, और जब तक वह युक्तियाँ दे, तब तक तुम अपने भान करनेवाले हृदय में उन परिणामों को स्थान देने की कोशिश करो, उन युक्तियों को स्वयं समझने का यत्न करो। राम के मुख से निकलने वाले परिणामों को तुम स्वयं अनुभव करने की चेष्टा करो।

उस सज्जन को, जिसे समाचार पत्रों में इसका विज्ञापन देना पड़ा था, यह शीर्षक "मनुष्य का भ्रातृत्व" बताने के बाद राम लज्जित हुआ। "मनुष्य का भ्रातृत्व" भ्रान्त-उपाधि है। "विश्वव्यापी भ्रातृत्व" भ्रमात्मक उपाधि है, यह यथार्थ ठिकाने पर नहीं पहुँचती। 'भाई' शब्द कुछ भेद जतलाता है। भाई एक दूसरे से कलह करते, लड़ते दिखाई पड़ते हैं, किन्तु

यहाँ तो किसी तरह के भेद के लिए ज़रा भी स्थान नहीं है, यहाँ भ्रातृत्व से अधिक है। "मनुष्य की एकता और संयुक्त एकता" अच्छा शीर्षक होता। आप कहेंगे, कि "आत्मा सम्बन्धी अनुमानों से हमे हैरान न करो, तुम सदा हम से आत्मा या स्वयं की चर्चा करते हो। यह तो बड़ा ही सूक्ष्म विषय है"। अच्छा, बहुत ठीक, यदि तुम आत्मा के बारे में सुनने को राज़ी हो तब तो बातचीत के लिए गुंजायश नहीं है, और सब मामला तुरन्त समाप्त हो जाता है। कम से कम इस विषय में हम सब एक हैं, कोई शब्द उस अवस्था को नहीं पहुँच सकते, कोई भाषा वहाँ नहीं जा सकती। किन्तु यदि तुम आत्मा के बारे में नहीं सुनना चाहते हो जो शब्दों से परे हैं, तो राम स्थूलतम स्थिति-बिन्दु से ही मामले को उठावेगा। हम स्थूल देह से शुरू करेंगे, वह अति स्थूल है। यदि हम आत्मा की प्रकृति को त्याग भी दें, यदि हम आत्मा को सच्चा अपना आप न भी समझें, तो स्थूल शरीर भी सिद्ध करते हैं कि तुम सब एक हो। सब मन प्रमाणित करते हैं कि तुम सब एक हो। भावना के लोक में भी विज्ञान सिद्ध करता है कि तुम सब एक हो; स्थूल लोक पर, मानसिक लोक पर, सूक्ष्म लोक पर तुम सब एक हो। यदि तुम ऐसा नहीं समझते, यदि तुम अपने अमली नित्य के जीवन में उस भ्रातृत्व का व्यवहार नहीं करते तो तुम अत्यन्त पवित्र सत्य को भंग कर रहे हो। तुम जानते हो कि जो मनुष्य राज्य के क़ानूनों के विरुद्ध दस्त अन्दाज़ी (हस्ताक्षेप) करने की चेष्टा करता है वह दंड पाता है, वह कोरा नहीं बच सकता। इसी प्रकार जो लोग इस भ्रातृत्व को नहीं भान करते और नित्य के जीवन में इस भ्रातृत्व को अमल में नहीं लाते, उन्हें दण्ड भोगना पड़ेगा। इस दुनिया की सारी व्यथा, इस विश्व की

सारी दुर्दशा और विफलता इस अत्यन्त पवित्र क़ानून-अत्यन्त पवित्र सत्य, क़ानूनों के क़ानून, मानव जाति के भ्रातृत्व, बल्कि हरेक और सब की एकता को केवल तुम्हारे तोड़ने के यत्न का फल है। अब हमारे सब भौतिक शरीर एक हैं। भाइयो! यह कैसे हो सकता है? यह शरीर यहाँ बैठता है और यह शरीर यहाँ खड़ा होता है, वे एक कैसे हो सकते हैं? जैसे समुद्र में हमें एक लहर यहाँ और एक तरंग वहाँ आन पड़ती है, ठीक वैसे ही ये विभिन्न स्थानों पर रक्खे आन पड़ते हैं, ये विभिन्न आकार-प्रकार के आन पड़ते हैं, किन्तु वास्तव में दोनों ये लहरें या तरंगें एक ही हैं. क्योंकि वे उसी पानी से हैं, वही समुद्र है जो इन लहरों में प्रगट होता है। जिस पानी ने अब इस लहर का रूप धारण किया है वह थोड़ी देर के बाद दूसरी लहर या तरंग बनावेगा। लहरों के मामले में हम जो कुछ देखते हैं वही बात तुम्हारे भौतिक शरीरों की भी है। जो पदार्थ अब इस शरीर का रूप लिए है वही कुछ देर के बाद दूसरे शरीर को बनावेगा, बल्कि इससे भी अधिक, जो भौतिक परमाणु इस शरीर के, जिसे तुम राम का शरीर कहते हो, सम्पादक जान पड़ते हैं, तुम्हारे जीवन काल में ही दूसरी देह में चले जाते हैं। ऐसा ही श्वासोच्छ्वास से सिद्ध होता है। तुम आक्सीजन (Oxygen) भीतर खींच रहे हो और उसे कार्बोनिक ऐसिड वायु (Carbonic acid gas) के रूप में परिणत करके बाहर निकाल रहे हो। यह कार्बोनिक ऐसिड वायु को पौधे भीतर साँस द्वारा ले रहे हैं और यह पौधे आक्सीजन छोड़ रहे हैं। उस आक्सीजन को तुम भीतर साँस लेते हो, और तुम साँस से बाहर निकालते हो कर्बन डायोक्साइड (Carbon dioxide). उसी कार्बन डायोक्साइड को फिर पौधे अपने भीतर खींचते

हैं। इससे हम देखते हैं कि पौधों से तुम्हारा भाइयों का जैसा सम्बन्ध है। तुम्हारी साँस उनमें जाती है और उनकी साँस तुम में पैठती है। तुम पौधों में साँस छोड़ते हो और पौधे तुम में साँस प्रविष्ट करते हैं। तुम बागों और पौधों से भी अभिन्न हो।

अब हम दूसरे पहलू से इसे विचारेंगे। जो आक्सीजन तुम साँस द्वारा भीतर खींचते हो और जो कार्बन डायोक्साइड में बदल जाता है, वह पौधों द्वारा छोड़ा हुआ था, वही आक्सीजन तुम्हारे भाइयों के फेफड़ों में जाता है। जो तत्व तुम्हारे शरीर में था वह अब तुम्हारे भाई के शरीर में है। तुम सबके सब वही हवा साँस लेते हो। ज़रा भान (महसूस) तो करो कि तुम सब के सब वही हवा साँस लेते हो तुम्हारे साँस में तुम्हारे सब शरीर एक हैं। जैसे तुम उसी एक ही पृथिवी पर रहते हो वैसे ही वही सूर्य, वही चन्द्रमा, वही वायुमंडल तुम्हारे चहुँ ओर है। तुम फल शाक-भाजी या मांस खाते हो। उनके खाने से तुम्हारे शरीर की रचना होती है। मल मूत्र के रूप में वे बाहर निकल जाते हैं और अपने इस त्यागे हुए रूप में वे उद्भिज्जों और फलों में प्रवेश करेंगे। वे उन रूपों में पुनः प्रगट होते हैं। वही पदार्थ, जो तुम्हारे शरीरों से बाहर निकला था, जब शाक-भाजियों और फलों के रूप में पुनः प्रगट होता है, तब फिर तुम्हारे भाइयों द्वारा ग्रहण किया जाता है, दूसरे लोगों के शरीरों में प्रवेश करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो पदार्थ एक बार तुम्हारा था वही तुरन्त दूसरों का हो जाता है। यदि हम सूक्ष्म दर्शन यंत्र से अपनी त्वचा की ओर देखें तो हम अपने शरीरों से छोटे जानदार परमाणु बाहर निकलते, बहुत ही छोटे जीते ज़र्रे अपनी देही से बाहर आते

देखेंगे। ये केवल बाहर ही नहीं निकल रहे हैं, किन्तु वैसे ही परमाणु तुम्हारे शरीर में जा रहे हैं। ये कुछ परमाणु शरीरों से बाहर आ रहे हैं और कुछ शरीरों में प्रवेश कर रहे हैं। इस दुनिया में निरन्तर विनियम (अदल बदल) हो रहा है। जानदार ज़र्रे जो अब तुम्हारी देह से बाहर आ रहे हैं, वे इस वायुमण्डल में फैल रहे हैं, और यही सजीव परमाणु, जो अब तक तुम्हारे थे बिना किसी विलम्ब के तुम्हारे संगी के हो जाते हैं। विज्ञान शास्त्र असंदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित करता है कि तुम्हारे भौतिक शरीर सब एक हैं। तुम शायद इस पर विश्वास न करोगे। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सजीव, अति सूक्ष्म परमाणु मेरे मित्रों के शरीरों से निकल कर मेरी देह में प्रवेश करते हैं, और जो परमाणु मेरे शरीर से बाहर आते हैं वे मेरे मित्रों के शरीर में चिमटते हैं? यह कैसे सम्भव है? आओ जाँचे। गंध का क्या कारण है? आप जानते हैं कि जो वस्तुएँ हम सूँघते हैं उनसे बाहर निकलने वाले छोटे, सजीव परमाणु गन्ध का कारण हैं। फूल छोटे जानदार ज़र्रे बाहर निकालते हैं, इसी लिए वे सुगन्धित हैं। यह एक विज्ञान-सिद्ध तथ्य है। यहां तुम्हारे सब शरीर हम देखते हैं, क्या उनसे गन्धि नहीं आती? किन्तु तुम्हारी घ्राणेन्द्रिय इतनी तीव्र नहीं है, या, यों कहिए कि, इस प्रकार की, अथवा इस सामर्थ्य की नहीं कि इस गन्ध को ग्रहण कर सकें। तुम्हारे शरीर गन्धिवान हैं। कभी कभी तुम्हें अपने शरीरों की गन्ध जान भी पड़ती है। कुत्ते सूँघ कर तुम्हें ढूँढ़ लेते हैं। यदि तुम्हारी देहों से गन्ध न आती होती तो कुत्ते तुम्हें सूँघ कर कैसे ढूँढ़ लेते? तुम्हारे शरीरों से निकलने वाली सब गन्ध सिद्ध करती है कि छोटे, सजीव परमाणु तुम्हारे शरीर को छोड़ रहे हैं और बाहर

निकल रहे हैं। ये छोटे सजीव परमाणु तुम्हारी देहों से बाहर जाते हैं और दूसरों की देहों से निकल कर तुम्हारी देहों में घुसते हैं। इसमें तुम सब एक हो। अरे, हम सब यही एक ही देह रखते हैं। उस गन्ध को भान करो। इस अर्थ में हम सब एक ही भौतिक शरीर रखते हैं। एक मनुष्य बीमार है, तुम उसके पास जाते हो और कमरे तक से उसकी बीमारी की गन्ध आती है। एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से बीमार है—हैज़ा, चेचक या प्लेग से। दूसरे लोगों को (बीमारी की) छूत कैसे ग्रस लेती है? एक मात्र कारण यही है कि जो छोटे ज़र्रे बीमार की देह से निकल रहे हैं वे तुम्हारे शरीर में पैठ जाते हैं। इससे क्या यह नहीं प्रगट होता कि रोगी की देहों से जो ज़र्रे बाहर आते हैं वे हमारी देहों में चिपट जाते हैं? इस तरह महामारी हमें पकड़ती है और हम अपने को बीमार भान करते हैं। एक मनुष्य को सर्दी हो जाती है, उसके साथ रहनेवाले दूसरे व्यक्ति को यदि वह बहुत कोमल स्वभावका मनुष्य है सर्दी हो जायगी। एक मनुष्य यक्ष्मा से पीड़ित है। दूसरे को यह रोग घेर लेता है। यह कैसे हो सकता यदि सजीव परमाणु, जो तुम्हारे भाई का शरीर बनाते हैं, उनके शरीरों से बाहर न निकलते और तुम्हारे शरीर न बनाते? इससे स्पष्ट होता है कि तुम सब एक हो। हमारे स्थूल शरीर भी एक हैं, आत्मा का तो कहना ही क्या है। अच्छा, राम इससे एक विलक्षण परिणाम पर पहुँचता है। यदि एक मनुष्य बीमार पड़ता है, तो उसकी बीमारी की मुख्य सूचना क्या है, तत्सम्बन्धी मुख्य उत्तरदायित्व क्या है? वह रोगी है; वह स्वयं रोग भुगत रहा है, यह सत्य है। क्यों? अपनी अज्ञानता के कारण। क्योंकि वह (अपनी अज्ञानता के कारण) हमें बीमारी लाता है। वह यद्यपि स्वयं

पीड़ा पा रहा है, किन्तु अपनी इस बीमारी के लिए वह सारी दुनिया के प्रति उत्तरदायी है। वह रोगी है और अपने रुग्ण शरीर के द्वारा रोग के कीटाणु वह बिना जाने फैला रहा है। मुझे बीमार पड़ने का कुछ काम नहीं है, केवल इसी लिए नहीं कि मुझे पीड़ा होगी, किन्तु इस शरीर की बीमारी के लिए सारे संसार के प्रति उत्तरदायी होने के कारण। तुम्हें बीमार होने का कोई हक़ नहीं है। अपनी बीमारी के लिए तुम सारी दुनिया के प्रति जवाबदेह हो, तुम्हारा रोगी शरीर सम्पूर्ण संसार को बीमार बना रहा है, यह उन रोगाणुओं की सृष्टि कर रहा है। इस प्रकार हरेक को खूब सावधान रहना चाहिए। बीमारी केवल शारीरिक रोग नहीं है किन्तु वह आध्यात्मिक वा मानसिक रोग भी है। तब तो तुम्हें चौकसी रखना चाहिए कि तुम्हारे शरीर बलिष्ट और चंगे रहें। तुम जब कोई पदार्थ खाओ या पीयो तब सावधान रहो, अपने व्यक्तिगत शारीरिक आराम के लिए नहीं, किन्तु सारे जगत के हित के लिए। अति अधिक न खाओ, अति अधिक न पियो, खूब सचेत रहो।

अच्छा फिर, जो लोग स्वस्थ हैं उनका रोगियों के प्रति क्या कर्त्तव्य है? जो स्वस्थ हैं उन्हें रोगियों की सेवा शुश्रूषा करनी पड़ती है। कृपा करने या प्रसाद देने के लिए नहीं, किन्तु समग्र संसार के लिए। सारे संसार की भलाई के लिए, मानव समाज और सत्य के नाम में, सार्वभौम भ्रातृत्व के नाम में, अपने निजी हित के नाम में, तुम्हें रोगी की शुश्रूषा करना है। रोगी पर यह दया नहीं है, रोगी की शुश्रूषा करना और उठाकर खड़ा कर देना तुम्हारा मानव समाज के प्रति कर्तव्य है। तब तुम देखते हो कि हमारे स्थूल शरीर, जो इतने विभिन्न जान पड़ते हैं, एक दूसरे के लिए

पीड़ा पा रहे हैं। सामान्य मांस और रक्त के अति पवित्र बन्धनों से जोड़े हुए, हम स्थूल लोक में आई हैं। आयुर्वेदज्ञ सिद्ध करते हैं कि प्रति सात वर्ष के बाद मनुष्य का शरीर बिलकुल बदल जाता है। देह के प्रत्येक परमाणु के स्थान पर नए परमाणु आ जाते हैं। यह भी तुम्हें बताता है कि इन परमाणुओं को जो बदल रहे हैं, इन शरीरों को, जो निरन्तर प्रवाह में हैं, केवल अपने या तुम्हारे समझने का इसमें कोई अधिकार नहीं है। यह शरीर मेरा और वह शरीर तेरा कहने का मुझे कोई हक़ नहीं है। हर क्षण यह देह बदल रही है, और इस क्षण जिसे मैं अपनी कहता हूँ वह वहां नहीं रहती। वह कौन सी वस्तु है जिसे मैं अपनी कहता हूँ? जो अब राम की देह है, वह सात वर्ष पूर्व किसी दूसरे की देह थी। चौदह वर्ष पहले जो राम की देह थी, वह अब किस की है? अनेक लोगों की। सो यह देह, जिसे तुम अपनी कह रहे हो, हरेक और सब की है। कृपया यह समझो। स्थूल लोक में भी तुम सब एक हो।

अब हम मानसिक (सूक्ष्म) लोक में आते हैं। तुम्हारे बाल बढ़ते हैं और तुम्हारी नाड़ियों में रक्त बहता है। ज़रा ध्यान दो। तुम्हारे बालों को बढ़ाने वाला कौन है? क्या वह शक्ति वही नहीं है जो तुम्हारे साथी मनुष्य के बाल बढ़ाती है? क्या तुम किसी भेद की धारणा कर सकते हो? नाड़ियों में रक्त बहाने वाला कौन है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हरेक और सब की नाड़ियों में रुधिर बहाती है? तुम्हारे पेट में अन्न कौन पचाता है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हरेक और सब के पेट में अन्न पचाती है? क्या यह एक और वही शक्ति नहीं है? इस सत्य को अपने चित्त के सामने रक्खो और एक पल के लिए इसे अनुभव

करो। अरे, आश्चर्यों का आश्चर्य, मैं क्या हूँ ?-क्या मैं वही शक्ति नहीं हूँ जो बाल बढ़ाती, भोजन पचाती तथा नाड़ियों में रक्त प्रवाहित करती है ? यदि मैं वही शक्ति हूँ तो मैं अविभक्त, एक हरेक, और सब की देहों में मौजूद हूं। मैं इन सब देहों की नियामक और शासक, अविभाज्य, अवर्णनी, और अविनाशी शक्ति हूं। कृपया इसे भान (महसूस) करो। यह सूक्ष्म जगत की बात है। तुम सब एक हो। तुम सब एक हो, कोई भेद नहीं। कृपया यह भान करो। यह एक देह, जिसे तुम अपनी कहते हो, जब भूखी मरती है तब बिकल क्यों होते हो ? सब शरीर, जो खूब खाने को पाते हैं, तुम्हारे ही हैं। यह शरीर विशेष, जिसे तुम अपना कहते हो, जब बीमार पड़ता है तब दुखी और उदास होने की क्या ज़रूरत है ? वे सब तुम्ही हो जो स्वस्थ हैं। इस सत्य को भान करो, इस सत्य को महसूस करो। दूसरों के प्रति तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ? जब दूसरे लोग बीमार पड़ें तब तब उन्हें अपने पास ले आओ और उनकी ठीक उसी तरह सेवा शुश्रूषा करो जैसी शुश्रूषा तुम इस शरीर विशेष के घावों की करते, उन घावों की शुश्रूषा करो मानों वे तुम्हारे ही हैं। दूसरों के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य उन्हें उठाना, उनके लिए भान करना (आकुल होना), उनसे सहानुभूति करना होगा। किन्तु अपने निजी शरीर के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य होगा कि अपने को सब अवस्थाओं में तुम सुखी और प्रसन्न रक्खो। सारी विकलता और क्लेश से बचे रहो।

अब हम मनोवृत्ति के लोक (Psychological plane) में, भावना के लोक में आते हैं। भावना के लोक में भी तुम सब एक हो। मनोवृत्ति के लोक में तुम सब एक हो। यह एक सत्य, तथ्य है, इसे अनुभव करो। एक सारंगी है, या

कमरे में खूब मिला हुआ खूब ठीक तारदार बाजा फ़र्ज़ कीजिए। कमरे के मुक़ाबिले में एक और तारदार बाजा रक्खा है। दोनों बिलकुल एकसां ठीक किए हुए हैं। जब तुम एक के तार को बजाना शुरु करते हो, तब सामने वाले तार से भी वैसी ही ध्वनि निकलती है। जब एक बाजे के एक तार को तुम बजाते हो, तब सामने के बाजे की भी वैसी ही तंत्री फड़कने लगती है। ऐसा क्यों होता है? कारण यह है कि जिन शब्दों से हमें एक बाजे से ध्वनि मिलती है, वे दूसरे बाजे के इर्द-गिर्द भी मौजूद हैं। तुम किसी बात को भान (मालूम) करना शुरु करते हो, तुम्हारे पड़ोसी पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। नाटक-अभिनयों Dramatic performances) में और नाट्यशालाओं (Theatrical places) में अभिनय-कर्ता सब प्रकार की मनोभावनाओं का स्वांग करते हैं। उनकी भावनाएं सच्ची नहीं होतीं। वे एक ओर तो रोते हैं और दूसरी ओर हंसने लगते हैं। उनकी भावनाएं सत्य नहीं होतीं। किन्तु फिर भी यह देखा जाता है कि जब कोई अच्छा अभिनेता रोना शुरू करता है तब सब दर्शक, सारे तमाशाई रो पड़ते हैं। यह क्यों? एक वीणा या तारदार बाजा बजता है और तुम्हारे मनों तथा भावनाओं के सब धागों पर तुरन्त आघात लगता है। यदि तुम सब के चित्त एक न होते, यदि तुम्हारी सब भावनाएँ या चित्त वृत्तियां या मनुष्य के अन्तःकरण या मनोविकारिक अस्तित्व भाइयों की भाँति एक दूसरे से सम्बद्ध न होते तो ऐसा होना असम्भव था। यदि तुम्हारे चित्त परस्पर एक दूसरे से ऐसे सम्बद्ध (या एक शरीर) न होते जैसे (एक ही सागर की) भिन्न २ लहरें और तरंगें, यदि तुम्हारे चित्त उसी एक सागर की लहरें और तरंगें न होते तो, यह समवेदना (परस्पर सहा-

नुभूति वा समभाव) असम्भव होती। विज्ञान कहता है कि एक शरीर की क्रिया का प्रभाव दूसरे शरीर पर पड़ने के लिए दोनों में अनुबन्ध वा अनुवर्तन (Continuity) का होना आवश्यक है। अनुबन्ध के क़ानून वा सातत्य नियम (Law of continuity) को तोड़ कर कोई शक्ति काम नहीं कर सकती। यह एक घन (ठोस) कठोर मेज़ या टेबुल है। इसके एक कोने को सरकाओ, सब सरक आती है। कारण यही है कि यह भाग (टेबुल के) दूसरे भागों से दृढ़ता पूर्वक जुड़ा हुआ है। हरेक शक्ति को क्रिया करने के लिए निरन्तर कर्म-धारा में क्रिया करना पड़ेगी। यहां एक मनुष्य की मनो-वृत्तियाँ व भावनाएं दूसरे मनुष्य के पास पहुँच जाती हैं। यदि एक मनुष्य का हृदय दूसरे मनुष्य के हृदय से, यों कहिए कि, एक निरन्तर मध्यम (Medium) से न जुड़ा होता तो ऐसा होना असम्भव होता। इस प्रकार यदि तुम्हारे सब हृदय एक दूसरे से निरन्तरता से, दृढ़ता से न जुड़े हुए होते तो एक मनुष्य की मनोवृत्तियाँ या भावनाए दूसरे तक कदापि नहीं पहुँच सकती थीं। यह एक कठोर तथ्य है। क्या तुम नहीं देखते कि एक मनुष्य की मनो-भावनाओं का दूसरे के पास पहुँच जाने का तथ्य तुम्हें इस परिणाम के लिए विवश करता है कि तुम्हारे सब चित्त या (अन्तः करण) एक दूसरे से युक्त हैं, मानों वे एक शरीर हैं, उनमें विचार और भावना की एकता है? राम ने प्रायः यह देखा है कि जब वह व्याख्यान में हंसता है तब हरेक व्यक्ति हँसता है। यह भी देखा जाता है कि जब एक मनुष्य रोने लगता है तब दूसरे लोगों के चित्त भी मृदुल, कोमल होने लगते हैं। यहाँ एक मनुष्य गा रहा है, जो लोग उसके इर्द-गिर्द हैं उनके दिल भी लहराने लगते हैं। राम ने यह भी

देखा है कि जब एक आदमी गाना प्रारम्भ करता है तब दूसरे लोग भी गाने लगते हैं। यदि तुम्हारी सब मनोवृत्तियां या चित्त एक न होते तो यह कैसे हो सकता था। कृपया इस पर ज़रा ध्यान दीजिए। हम कैसे बातें सीखते हैं। हम अपने मित्रों से, दूसरे लोगों से सीखते हैं। कोई शिक्षक तुम्हें कोई बात कैसे सिखा सकता यदि शिक्षक और शिष्य का वही चित्त न होता, यदि मानसिक जगत में उनमें परस्पर बन्धुत्व न होता? यह एक चित्त सीधा दूसरे चित्त से वार्तालाप कर रहा है, शिक्षक का ज्ञान शिष्य का हो जाता है, यह कैसे हो सकता था यदि दोनों चित्तों का सीधा संयोग न होता? और फिर आप जानते हैं कि यह अनुभव का विषय है कि जब वास्तव में दूसरे मित्र के लिए आप में सम्वेदना उत्पन्न होजाती है, और जब आप प्रेम दया, उदारता, की वृत्तियों को एक मनुष्य के लिए आदर भाव को हृदय में पोषण करते हैं, तब दूसरा मनुष्य हजारों मील की दूरी पर स्फुरण भान (महसूस) करने को बाध्य हैं। राम ने इस तथ्य की सत्यता की परीक्षा की है, और प्रत्येक दिन राम इसकी परीक्षा करता है। हज़ारों पर हज़ारों मीलों से कोई भेद (इसमें) नहीं पड़ता। क्या इससे यह नहीं प्रगट होता कि तुम्हारे सब चित्त एकही लोक के है, घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं, एक हैं? मानसिक लोक में तुम भाई हो।

इस दुनिया में अपराधियों और कुकर्मियों की उत्पत्ति कैसे होती है? एक मनुष्य आता है और तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचाता है; किन्तु वह मनुष्य बड़ा बली है, तुम से कहीं अधिक शक्तिशाली है। तुमसे उसके लिए विद्वेष का ख्याल निकलता है, किन्तु घृणा के उस भाव को तुम कार्यान्वित नहीं कर सकते। वही प्रबल मनुष्य दूसरे मृदुल मनुष्य की

भावनाओं को आघात पहुँचाता है। वह दूसरा मनुष्य इससे कष्ट होता है, बुरे विचार बाहर निकालता है. किन्तु अपने ही शरीर द्वारा उन्हें अमल में नहीं ला सकता। बलवान मनुष्य एक तीसरे व्यक्ति की भावनाओं को घायल करता है। तीसरा व्यक्ति भी दीन है और अपराधी को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुँचा सकता। इसी तरह मान लीजिए बीस, पचास, या सौ मनुष्य एक मनुष्य से पीड़ित होते हैं। अन्त को एक समय आता है जब यह बलवान मनुष्य एक अत्यन्त ही बलवान मनुष्य के पास पहुँचता है, जो उसका जोड़ है। मूल अपराधी से बहुत ही थोड़ा अपमानित होने पर यह व्यक्ति इतना क्रुद्ध और जामे के बाहर हो जाता है कि वह अपमान की मात्रा का कुछ भी विचार नहीं करता, वह नहीं सोचता कि अपमान बहुत हलका या बहुत भारी है, उचक कर खड़ा हो जाता है और हाथ में बन्दूक़ लेकर उसे मार देता है। मूल अपराधी को बन्दूक़ मार दी जाती है, दूसरा मनुष्य घातक कहकर पुलिस द्वारा पकड़ा और मजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जाता है। मजिस्ट्रेट मामले की जांच शुरू करता है। अपमान की तुलना में क्रोध को बिलकुल बे हिसाब देख कर वह चकित होता है। अनादर बहुत ही कम था, किन्तु दूसरे अपराधी में भड़क उठने वाला रोष विकट था। मजिस्ट्रेट को अचम्भा होता है। समाचार पत्रों में मामले की चर्चा होती है। यह एक तुनुक़ मिज़ाज आदमी था, यह बड़ा ही खराब आदमी था, अति सामान्य अपमान ने उसके गुस्से की आग इतनी भड़का दी कि उसने हत्या कर डाली। ऐसे मामले क्या नित्य नहीं घटते? मजिस्ट्रेट और समाचार पत्रों की समझ में नहीं आता कि इतने छोटे अपमान से ऐसा भयंकर रोष क्यों भभक उठा। वेदान्त इसे समझाता

है। वेदान्त मानसिक लोक में साझे की कंपनी (ज्वाइंट स्टाक कंपनी; Joint Stock Company) कहता है। आप जानते हैं कि सम्मिलित भांडार कंपनियों में बहुत हिस्सेदार होते हैं और एक मनुष्य कर्त्ता या कार्याध्यक्ष होता है। इस तरह जब मूल अपराधी ने तुम्हारी भावनाओं को उत्तेजित किया था, तब तुम ने उसके विरुद्ध वैर और विद्वेष के ख्यालों को बहाया था, और उसमें तुमने अपना भाग, अपराधी मनुष्य के विरुद्ध रोष का अपना हिस्सा, प्रदान किया था। जब दूसरा मनुष्य अपमानित हुआ था, तब दूसरे मनुष्य ने अपना हिस्सा दिया, और जब तीसरे व्यक्ति का अनादर हुआ, तब उसने अपना हिस्सा दिया। ऐसे ही चौथे, पाँचवें, या छठे प्रभृति ने। इस तरह पर वह समय आया जब व्यापार शुरू करने के लिए जो कुछ आवश्यक था उसकी पूर्ति होगई। जब हिस्सों की यथेष्ट संख्या की रक़म आगई, तब एक कर्ता, प्रबल मनुष्य, प्रगट हो गया; और जब इस प्रबल मनुष्य का अपमान हुआ तब आत्मिक बन्धुता के नियम से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, और बीस तथा सौ मनुष्यों के भेजे हुए रोष, ये सब के सब रोष इस कर्त्ता के पास तुरन्त बटुर गए, जिस ने सांघातिक चोट पहुँचाई। जिस ने मूल अपराधी को गोली से मारा और स्वयं राज्य का अपराधी बना, उस के शरीर में सब रोष आकृष्ट हुए, आ धमके, और जमा हो गए। सरकार या राज्य केवल इस कर्त्ता को दंड देगी। किन्तु ईश्वर के नेत्रों में या परमेश्वर अथवा सत्य की दृष्टि में तुम सब के सब हिस्सेदार हो, तुम सब घातक हो। तुम भी हत्यारे हो। शत्रुता या विद्वेष के विचारों को भेजने वाले तुम भी उतने ही दोषी हो जितना दोषी वह मनुष्य है जिस ने हत्या की। इस प्रकार ईसू कहता है कि केवल हत्या न करने से काम न चलेगा

किन्तु तुम्हें विद्वेष के विचारों को भेजने से भी बाज़ रहना पड़ेगा। जो अपने साथी से घृणा करता है वह ठीक उतना ही अधिक हत्यारा है जितना कि वह मनुष्य जो वस्तुतः खून करता है। क्यों? जबकि यह स्पष्ट करता है कि जो लोग हत्या करते हैं वे प्रायः क्यों अपमान के हिसाब से बहुत अधिक बिगड़ जाते हैं। अपमान बहुत ही छोटा था, किन्तु रोष और उत्तेजना विकट होता है। इस में तुम देखते हो कि केवल व्यक्तिगत क्रोध ही नहीं भड़क उठा, तुम्हारे भाइयों का कोप भी तुम्हारे पास आता और तुम्हें दबा लेता है, तथा तुम पागल हो जाते हो। तुम्हें तुम्हारे उन साथियों का कोप क़ाबू में कर लेता है जिनका अपराधी ने अति अल्प अपमान किया था। जिस तरह एक मनुष्य दैत्य के वश में पड़ा हुआ कहा जाता है, जैसे एक मनुष्य पर प्रेत सवार हो जाता है, उसी प्रकार तुम अपने साथी के प्रति रोष के क़बज़े में आ जाते हो, और उसके क़बज़े में आकर जामे से बाहर; उन्मत्त हो जाते हो, और उस दशा में तुम प्राणघाती आघात करते हो, और लोग आश्चर्य करने लगते है कि अपमान के हिसाब से कहीं अधिक कोप क्यों भड़क उठा था। इस तरह तुम्हारे हत्यारे उत्पन्न होते हैं। दुनिया का इतिहास पढ़ो और तुम पाओगे कि आतंक (terror) के राज्य के बाद सब लोगों ने एक ऐसे मनुष्य की इच्छा की जो बड़ी ही क्रूरता से काम चला सके, जो उच्छृंखल जन समूह (mob) को क़ाबू में रख सके। हरेक ने उच्छृंखल जनसमूह को क़ाबू में करना चाहा, किन्तु उनमें किसी में यह शक्ति नहीं थी। अब हरेक और सब में यही इच्छा थी कि ऐसा पुरुष मिले जो विद्रोही लोगों का नियंत्रण करे और इस (इच्छा) ने नेपोलियन के शरीर में आकार (रूप) धारण किया। नेपोलियन ठीक उसी समय

आता है जब समय को उस की आवश्यकता होती है और उस में हज़ारों की, बल्कि लाखों की शक्ति है। नायकों वा शूरवीरों (heroes) में लाखोंकी शक्ति क्यों होती है? एक सैना नेपोलियन को पकड़ने आई और वह अकेला उनके पास सीधा जाकर बोला, "बस (*Avaunt*)" और वे रुक गए। यह एक मनुष्य उन हज़ारों मनुष्यों को जो उसे गिरफ़्तार करने आये थे डपट के चुप कर देता है। ऐसे तथ्य सुन कर लोग चकित हो जाते हैं। वेदान्त उसे समझता है। वेदान्त कहता है कि वास्तव में हज़ारों की शक्ति, विचार, एक मनुष्य में जमा होगए हैं, सचमुच हज़ारों के विचार उस मनुष्य में हैं। इस प्रकार नेपोलियन को कोई अधिकार नहीं है, किसी भी नायक (hero) को आत्म-श्लाघा के विचारों को हृदय में स्थान देने का कोई अधिकार नहीं है। नायकवर ! यदि तुम में लाखों की शक्ति है, तो तुम लाखों हो। तुम्हारे शरीर में लाखों के विचार काम कर रहे हैं। तुम्हारा विशिष्ट रूप से पाला-पोसा दैवी शरीर कहां है? तुम में लाखों काम कर रहे हैं। तुम फिर शेक्सपीयर, एक महान नाटककार को देखते हो। इन दिनों किसी शैक्स-पीयर की ज़रूरत नहीं है। उन दिनों में लोगों को शैक्स-पीयर की आवश्यकता थी और शैक्सपीयर आया। वे नाटकशाला में जाने के दिन थे, उन दिनों सब लोगों को नाटक-मंच का उन्माद था। उन दिनों को नाटककारों की आवश्यकता थी, नाटकों की आकांक्षा थी। लोगों को उनकी चाह थी और लोगों ही के चित्त और विचार शेक्सपीयर के रूप में प्रगट हुए थे। तुम देखते हो कि शेक्सपीयर अथवा दूसरा कोई महापुरुष अकेला नहीं प्रगट होता। शेक्सपीयर के साथ ही हम उज्ज्वल पुरुषों, मेधावियों, तात्विकों—

मारलो, (Marlow) बिउमोंट, (Beaumont) और फ्लेचर (Fletcher) और कौन कौन नहीं—की एक पूरी निर्मल धारा पाते हैं और उस से पहले उसी प्रकार के साहित्य का पूर्ण राज्य हम पाते हैं। इन मामलों की परिस्थितियां, लोगों के समय, विचारों को प्रेरित करते हैं, उस ओर विचार भेजते हैं, और ये सब विचार रसायनिक बन्धुता के एक नियम के अनुसार एकत्रित शरीर में एक होते हैं, और तब तुम्हें शेक्सपीयर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तुम देखते हो कि तुम्हारा मधुर-वाणी वाला शेक्सपीयर और तुम्हारे वक्ता जो बड़ी २ जमातों पर अपना आतंक जमा सकते हैं, एक मनुष्य जो हज़ारों को काबू में रख सकता है, एक सेना-नायक जिस का वचन हज़ारों, लाखों के लिए क़ानून हो जाता है, एक मनुष्य जो लाखों और लाखों मनुष्यों में पौरुष और कर्मण्यता फूंक देता है? यह सब कैसे हो सकता यदि लाखों मनुष्यों के विचार विभिन्न शरीरों में न जमा हो सकते? अब तुम देखते हो कि शेक्सपीयर और नेपोलियन तुम्हारी अपनी ही सृष्टि हैं। तुम्हारे मनोवेग और तुम्हारे विचार उनके मनोविकार और उनके विचार हो जाते हैं। ये ऐतिहासिक तथ्य हैं, और हम नित्य भी इन्हें अपने सब ओर देखते हैं। इस तरह अन्तः करण सम्बन्धी लोक (मनो मय कोष) में भी तुम सब एक हो।

जेरूसलेम पर अधिकार जमाने के लिये ईसाइयों के युद्धों (क्रूसेड, Crusades) का क्या कारण हुआ? एक मनुष्य को जेरूसलीम की दशा के लिए बहुत वेदना हुई। वह यूरोप लौटा और यूरोप-वासियों में जेरूसलेम की दुर्गति के विषय प्रचार किया। उसने प्रचार किया, रोदन और विलाप किया। एक मनुष्य को यह वेदना हुई, और लोगों

की वही भावनाएं हो गईं । एक की भावनाएं दूसरों की भावनाएं हो गईं। उन सब ने तुर्कों, मुसलमानों के विरुद्ध अस्त्र उठाये। इस तरह ईसाई धर्मयुद्ध हुए। तुम्हारा स्वाधीनता का युद्ध (War of Independence) कैसे हुआ ? उसी तरह। एक मनुष्य, अमेरिका की पहली महासभा (Congress) के सभापति ने, जब लोग उस से सहमत नहीं हुए, तलवार खींची। उसने मियान से अपनी तलवार निकाली और कहा, "मैं तो समर, समर, समर के पक्ष में हूँ"। फिर तो सब लोगों को उस की बात ग्रहण करना पड़ी। कांग्रेस के उन्हीं लोगों को, जो युद्ध के विरुद्ध थे, और उस के विरुद्ध थे, उस का अनुकरण करना पड़ा इस प्रकार तुम देखते हो कि यदि तुम्हारे हृदय और चित्त एक न हों तो ऐसी विलक्षण करतूतों के वे अधिकारी कैसे बन सकते? हम एक हैं। इस एकता को भान (महसूस) करो।

अब हम दूसरे कोष (लोक) में आते हैं। तुम देखते हो कि अपनी गाढ़ निद्रा की अवस्था में सब एक हो। निद्रा बड़ी बराबर करने वाली है। गाढ़ निद्रा अवस्था में कोई भेद नहीं जान पड़ता। बादशाह और दीन आदमी; उन मखमल के गद्दों पर सोने वाला, जिन पर सुन्दर चादरें बिछी होती हैं, महाराज, और सड़कों पर सोनेवाला दीन भिक्षुक, एक ही दशा में हैं। सुषुप्ति अवस्था में उन दोनों का ख्याल करो। क्या भेद है? दोनों एक और वही हैं। अपनी गाढ़ निद्रा-अवस्था में तुम एक हो। तुम्हारी जागृत अवस्था में तुम्हारे शरीर सब एक हैं। और तुम्हारी भावनाएँ और चित्त, जो इस स्वप्न-भूमि में रहते हैं, सब एक हैं। अब हम वास्तविक आत्मा, असली तत्त्व पर विचार करते हैं। अरे, एक आत्मा, असली तत्त्व, सच्चा स्वरूप!

भाषा अथवा किसी भेद-वाक्य के लिए यहां कोई स्थान नहीं है। यहां तो 'लहर' या 'तरंग' शब्द का भी प्रयोग नहीं हो सकता, इस में तुम सब एक हो। तुम कहोगे, नहीं, मेरा बेटा मेरा है, किन्तु यह व्यक्ति मेरा नहीं है। यदि तुम ऐसा सोचते हो तो तुम्हारी गलती है। ऐसा नहीं है। जिन को तुम अपने से भिन्न कहते हो वे उतने ही तुम्हारे अपने हैं जितना कि तुम्हारा पुत्र अपना है। तुम्हारे पिछले जन्मों में कितनी बार तुम्हारा उनसे भाइयों, पुत्रों या बेटियों, या पिताओं का सम्बन्ध हुआ, क्या तुम यह जानते हो? वही पुरुष जो आज तुम्हारा शत्रु है, पिछले जन्म में शायद पिता या पुत्र रहा हो। इस जन्म में जो आदमी तुम्हारा पिता है वह तुम्हारे अगले जन्म में तुम्हारा पिता शायद न हो। अपने अगले जन्म में तुम भिन्न माता-पिता से उत्पन्न होगे। तुम्हारी भावनाएँ और सहानुभूतियाँ बराबर बदल रही हैं और उसी तरह तुम्हारे मित्र और नातेदार, बहनें और भाई भी निरन्तर बदल रहे हैं। क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य एक ही घर में कुछ लड़कों और लड़कियों के साथ जन्म लेता है और अपनी सारी ज़िन्दगी उनसे अलग बिताता है, अपनी ज़िन्दगी में उन्हें फिर कभी नहीं देखता, और क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य इस देश में जन्म लेता है और सम्पूर्ण जीवन बिताता है दूसरे देशों में? कारण यह है कि जो लोग दूसरे देशों में पैदा हुए थे वे उस के आध्यात्मिक सम्बन्धी होते हैं। इस प्रकार तुम देखते हो कि तुम्हें अपना भाईचारा केवल उन्हीं तक न परिमित करना चाहिए जिन्हें तुम अपनी बहनें और भाई, स्त्रियाँ या पति कहते हो। सब, सब, प्रत्येक और सकल तुम्हारे अपने स्वरूप हैं। इसे अनुभव करो। विज्ञान इसे प्रमाणित करता है।

अब राम उपसंहार करने लगा है। विज्ञान स्पष्ट करता है कि जिस प्रकार यह देह-विशेष, जिसे तुम अपना आप [व अपना स्वरूप] कहते हो, एक है, पैर के अँगूठे एड़ी से जुड़े हुए हैं, और वह शरीर के दूसरे अवयवों से मिली हुई है, और तुम्हारे शरीर के सब अणुओं में सातत्य नियम (Law of continuity) दौड़ रहा है और तुम्हारा शरीर एक है, निरवयव सम्पूर्ण (Indivisible whole) है, और उस आधार पर तुम देख सकते हो कि वह केवल एक शक्ति, आत्मा, है, जो सिर और पैरों में समान रूप से भरी हुई है। वही आत्मा पैरों और हाथों में व्याप्त है। तुम यह देखते हो। अब विज्ञान सिद्ध करता है कि इस विश्व के विभिन्न पदार्थों का एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध है कि, यदि अत्यन्त अनुन्नत जीवबीज (undeveloped protoplasm) के पास हम उच्चतर रूप का जीवबीज रख दें और उस के बाद हम उस से भी उच्चतर प्रकार को रख दें,और इसी क्रम से रखते जाँय, और यदि इस विश्व में हम प्रत्येक वस्तु ठीक क्रम से सजा सकें, तो इस विश्व में हम हरेक पदार्थ में सात्यता [निरन्तरता] को सञ्चार करते देखेंगे। इस अत्यन्त अभेद्य निरन्तरता को हम सम्पूर्ण संसार को धारण किए पाते हैं। ऐसी दशा होने से, सम्पूर्ण विश्व एक, निरवयव [अविभाज्य] शरीर है। अब, जिस प्रकार एक सम्पूर्ण शरीर के मामले में तुम मानने को लाचार हो कि एक आत्मा कानों और पैरों में तुल्य रूप से व्याप्त हो रहा है, उसी प्रकार तुम्हें मानना पड़ेगा कि, इस सम्पूर्ण विश्व में, जो एक निरन्तर शरीर है, एक स्वरूप या आत्मा सूक्ष्मतम अणु तथा उच्चतम देवदूत को व्याप्त या परिपूर्ण किए है। इस प्रकार परमोच्च देवदूत का स्वरूप या आत्मा वही है जो अत्यन्त तुच्छ कीट

का स्वरूप या आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के स्थिति बिन्दु से तुम सब एक हो।

मनुष्य का भ्रातृत्व स्थापित करने के लिए युक्तियां और दलीलें तुम्हारे सामने किसी अंश तक रक्खी जा चुकीं। अब राम इस सत्य के अमली प्रयोग पर ज़ोर देगा। तुम बुद्धि से इसे चाहे न स्वीकार करो, किन्तु धार्मिक नियम तुम्हें यह सत्य मानने को विवश करेंगे। तुम्हें या तो इस पर अपने जीवन में अमल करना होगा या मरना होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह हाथ है। एक बार यह स्वार्थ परायण हो गया और भाईचारे या एकता के नियम को इसने तोड़ना चाहा और इस तरह तर्क करने लगा: "यहां मैं हूँ, मैं सारे दिन काम करता हूँ, किन्तु मेरे श्रम का सारा लाभ पेट, या शरीर के दूसरे अंग उठाते हैं, मैं कुछ नहीं खाता। मैं दांतों या मुखको सब लाभ न उठाने दूंगा, हरेक वस्तु मैं आप ही लूँगा"। यह दलील देने के बाद, हाथ इसे चरितार्थ करने को उद्यत हुआ। जो भोजन थाली में परोसा गया—दूध, मांस, सब प्रकार के सामान, फल, शाक, इत्यादि—सभी पदार्थ अब हाथ को खुद ही खाना चाहिए, हाथ को स्वयं अपना लाभ उठाना चाहिए। हाथ ने एक सुई ली एक छेद किया और वह दूध इस में उड़ेल दिया, वह दूध भीतर भर दिया जिस से मुख न लाभ उठा सके। हाथ ने अपने को बीमार कर लिया, उस से उसका लाभ नहीं हुआ। एक और उपाय था। अपने को मोटा करने के लिए हाथ ने शहद लेना चाहा, यह मधु कहाँ से आता है? मधुमक्खी से। इस लिए हाथ ने मधुमक्खी ली और उस से अपने को कटवा लिया। हाथ को बहुत मधु मिल गया, उसने मधुमक्खी का जीवन अपने भीतर कर लिया। आप जानते हैं कि

काटने के बाद मधुमक्खी मर जाती है। हाथ खूब मोटा हो गया, सारा मधु हाथ में आ गया था। किन्तु ओह! इस से तो हाथ पीड़ित और व्यथित होगया, इस ने तो हाथ को क्लेश दिया। जब हाथ को पीड़ा होती ही रही तब तो कुछ देर बाद उस के होश ठिकाने आगए। हाथ ने कहा, "मैं जो कुछ उपार्जन करता हूँ, वह सब मुझे ही न मिलना चाहिए। मैं जो कुछ कमाता हूँ वह सब पेट में जाना चाहिए और वहां रुधिर के द्वारा, पैरों और हाथों के द्वारा, शरीर के प्रत्येक अंग द्वारा, उस का व्यवहार होना चाहिए, और तभी केवल तभी मैं, हाथ, लाभ पा सकता हूँ। दूसरा कोई उपाय नहीं है। तभी और केवल तभी हाथ का हित हो सकता है"। अब हाथ मानने को लाचार हुआ कि हाथ का आत्मा इस छोटे से रक़बे में क़ैद नहीं था। हाथ के स्वयं (आत्मा) का तब उपकार होगा जब समग्र शरीर के आत्मा का लाभ होगा, जब नेत्रों के स्वयं का कल्याण होगा। हाथ का स्वयं वही है जो नेत्रों का स्वयं है, कानों का स्वयं है तथा सम्पूर्ण शरीर का स्वयं है। अतएव हाथ ने जिस तरह चेष्टा की थी उस तरह स्वार्थपरायण होने की चेष्टा करने से तुम्हें परिणाम भोगने पड़ेंगे तुम्हें उसी तरह पीड़ित होना पड़ेगा जिस तरह अपनी स्वार्थपरता को कार्य में परिणित करने की चेष्टा करने से विचारे हाथ को। दैवी क़ानून तुम्हें अपने आप को अपनी श्रेणी से पृथक होने की अनुमति नहीं दे सकता। जब तुम अपने आप को अपने संगी लोगों से अभिन्न नहीं समझते तब अत्यन्त पवित्र सत्य-नियम भंग होता है। जो व्यापारी अपने ग्राहकों के स्वार्थ को अपना ही नहीं समझते, या जो दुकानदार अपने ग्राहकों के स्वार्थों को अपने स्वार्थों से अभिन्न नहीं समझते, अपने को बरबाद

कर देते हैं और उन से लोग हटते तथा घृणा करते हैं। तुम्हें अपने जीवन में इसे अनुभव करना होगा, तभी और केवल तभी तुम फूलो-फलोगे। ऐ हाथ, तेरा आत्मा समग्र विश्व का आत्मा है, तेरा आत्मा आँखों और पैरों और दाँतों तथा शरीर के प्रत्येक दूसरे भाग का आत्मा है। यह भान करो, यह अनुभव करो। यदि तुम अपने आप को कम्बख़्ती से परे रखना चाहते हो और अपने को सुखी करना चाहते हो, तो हरेक और सब से इस एकता को अनुभव करो। तुम्हारा आचरण प्रकट करेगा, तुम्हारा अपना अनुभव सिद्ध करेगा कि जब तुम इस एकता को भान और अनुभव करते हो, जब तुम इस सत्य पर अपने चित्त को एकाग्र करते हो, तब तुम्हारे आस-पास का सब कोई तुम्हारी सहायता के लिए आने को ऐसा बाध्य है जिस तरह हाथ इस अंग की सहायता को आता है जब कि इस अंग में खुजली या पीड़ा होती है। यहां तुम्हें खुजली जान पड़ती है, हाथ तुरन्त यहां पहुँच जाता है। इसी तरह यदि तुम अनुभव करो कि स्वयं, आत्मा, या तुम्हारी सच्ची प्रकृति वही है जो तुम्हारे संगी के स्वयं या आत्मा की, जिस का तुम्हारे संकट के समय तुम से वही नाता है जो तुम्हारे सच्चे स्वयं का है; जब तुम ज़रूरत में होगे तो तुम्हारे साथी तुरन्त आवेंगे और तुम्हारी सहायता करेंगे। यह मामला अनुभव का, अमल का है, परीक्षा से प्रमाणित होने वाला तथ्य है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

धर्म ।

मथुरा में दिया हुआ व्याख्यान ।

धर्म (Re-ligion, रिलीजन) जैसा कि शब्द की धातु से प्रकट है,[re (री, =पीछे, ligare (लिजारी) = बाँधना] वह है जो किसी को मूल या मुख्य स्रोत से फिर बाँधता है ।

प्रश्न-मूल या स्रोत क्या है ? वह क्या है जिस की आज्ञा से मनो चित्त सोचता है, नेत्र देखते हैं, और प्रकृति जीती है ?

उत्तर—जो चित्त,नेत्रों,और दूसरी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता,किन्तु चित्त, नेत्रों इत्यादि को उनके काम में शीघ्र लगाता है, वह ब्रह्म है । ब्रह्म विचार या धारणा का पदार्थ नहीं हो सकता । "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" मन और वाणी भयभीत होकर उस से लौट पड़ते हैं ।

चिमटा प्रायः अन्य सब वस्तुओं को पकड़ सकता है, किन्तु वह पलट कर उन्हीं उँगलियों को कैसे पकड़ सकता है जो उसे पकड़े हैं ? अतएव किसी तरह भी यह आशा नहीं की जा सकती कि मन या बुद्धि उस महान अज्ञेय [Unknowable] को जान सकते हैं जो उनका मूल स्रोत है ।

तब अध्यात्म-विद्या विशिष्ट और स्वमताभिमानी मलिनताओं से भी रहित, धर्म अवश्य ही एक गुह्य प्रक्रिया है जिस से मन या बुद्धि पीछे लौटता है और अपने को दुर्बोध स्रोत में, परम परे में लीन कर देता है ।

भक्त ईसाई या धार्मिक मुसलमान प्रार्थना करते समय अपने हाथ ऊपर उठा लेता है, बेजाने जतलाता है कि वह ऊपर, परे, अचिंत्य है, जिसे पहुँचने की वह चेष्टा कर रहा

है। भक्ति में डूबे हुए या समाधि में लीन हिन्दू के नेत्र स्वभावतः बन्द हो जाते हैं जिस से साफ़ सूचित होता है कि वह भीतर, अदृश्य, परे है, जिस में उसका मन या बुद्धि लीन होता जाता है।

"एक धर्म" नहीं, किन्तु "धर्म", जो इसलाम, हिन्दुत्व या इसाइयत की आत्मा है, यथार्थ में अग्राह्य (Unknowable) की वह अवर्णनीय उपलब्धि है, जिसमें जात-पांत, वर्ण, और सम्प्रदाय, सब कर्मकांड और मत. शरीर और मन, देश, काल और वस्तु जो कुछ उनमें समाया हुआ है. उसके सहित यह लोक और वह सब लोक जिनकी कल्पना की जा सकती है, सब साफ़ 'उस में' वह जाते हैं जो शब्द मात्र से परे है। क्या यह रहस्य मय है? ज़रा भी नहीं।

सच्चे धार्मिक अनुभव का कोई भी मनुष्य अपने उस क्षण का विचार करे जिसे [परमेश्वर से] संयोग कहते हैं, और फिर भला कहे तो कि परमेश्वर की कोई भी कल्पना, अपने आप की या संसार की कल्पना का तो ज़िक्र ही क्या, उस समय रह जाती है। सच्चे अनुभव में मेरा और तेरा नहीं रहता, कर्त्ता और कर्म का कोई चिह्न नहीं होता।

ऊपर बताए हुए लक्ष्य को पहुँचाने वाला कोई भी यथा-क्रम प्रयत्न [वा प्रयास] धर्म है।

कहा जा सकता है कि ऐसे गूढ़ परिणाम को लक्ष्य बनाने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हमें यह जाँचना चाहिए कि मनुष्य के मुख्य आदर्श और आकर्षणके पदार्थ - ज्ञान, वीरता, प्रेम और सौख्य—साधारणतः किस उपाय से प्राप्त होते हैं।

१—बाहरी उपायों जैसे पुस्तकों या शिक्षक द्वारा प्राप्त हुए २ बोध की मात्रा को साधारणतः ज्ञान समझा जाता है,

और यदि किसी मनुष्य ने इन पांडित्यपूर्ण प्रामाणिक ग्रंथों से अपने दिमाग़ को भर लिया है, जिनका कभी दिन था, तो वह पंडित समझा जाता है। यह सत्य है कि भूत काल की करतूतों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए और वे सतर्क अध्ययन के योग्य हैं, किन्तु सच्ची शिक्षा [इजूकेशन अर्थात् e (इ) = बाहर, duco (ड्यको) = मैं खींचता हूँ वा निकालता हूँ] तभी शुरू होती है जब मनुष्य सब बाहरी सहायताओं से भीतरी अनन्तता की ओर मुँह फेरता है और मानो मौलिक ज्ञान का नैसर्गिक स्रोत या चिह्नित नव-विचारों (Brand new ideas) का सोता होजाता है। निउटन (Newton) और सत्य के दूसरे ईश्वर दूत (Apostles) उपयोगी आविष्कार बहाते हैं। किस ने उन्हें सिखाया? उन्हों ने किन किताबों से वह सब सीखा जो सब भूतपूर्व अनुसंधानों का आतक्रमण कर गया? मानव जाति के उपकारियों की शिक्षा निस्सन्देह, अज्ञानता से उस सच्चे आत्मा को पहुँचना ही थी, कि जिस अकेले से सब बेसुना सुना जाता है, सब दुर्बोध जाना जाता है, सब अचिन्तनीय विचारा जाता है। जब किसी का मन ध्यान-मग्न हो जाता है तब उस से प्रकाश झलकता है, अर्थात् जब कोई मनुष्य अपने तुच्छ स्वयं को खो देता है, जब उस की देह, मन, इत्यादि मानो उसके लिए अन्तर्धान हो जाते हैं, और उस अवस्था की प्राप्ति हो जाती है जिस में संसार, अहंकार और हरेक वस्तु महान अज्ञेय (Great Unkowable) में डूब जाती है, तभी और केवल तभी सत्योपदेशों की वर्षा होती है, आविष्कार (Discoveries) प्रादुरभूत होती हैं, ज्ञान बहने लगता है, और प्रकृति के भेद खुल जाते हैं। इस तरह सब सत्योपदेश, आविष्कार, उद्भावनाएँ, कल्पनाएँ, सिद्धान्त और ऐसी ही बातें पूर्वोक्त एक प्रकार

के पारलौकिक योग या धर्म का नैसर्गिक निचोड़ है। एक बार उस अलौलिक चैतन्यावस्था में आ जाने से श्रेष्ठ विचारों और उत्कृष्ट कल्पनाओं की उत्पत्ति कवि से अवश्य हो जाती है। गणित शास्त्री या दार्शनिक को केवल अपनी वाह्य "मैं" [देह दृष्टि] त्याग देना है, फिर अत्यन्त पेचीदा सवालों के अपूर्व समाधान उसे सूझेंहींगे। किसी समस्या के हल हो जाने पर या आविष्कार के प्रकट होने पर वाह्य "मैं" यश उसका लेना चाहता है, किन्तु सर्वाधिकार स्वाधीन रखने वाला अथवा विशेष स्वत्व का सनद लेने वाला "मैं" जब तक अपने अस्तित्व का यह बोध करा रहा था, तब तक कोई आविष्कार नहीं हुआ था, जब "मैं" ने अपने आप को अर्पण कर दिया और पूर्वोक्त धर्म की कल्पना अनुभव करली गई, केवल तभी सफलता और ज्ञान का स्रोत फूटना शुरू हुआ।

२—रणभूमि में किसी वीर [शूरवीर] का निरीक्षण कीजिए। शक्ति की अलौलिक बहुलता से वह उन्मत्त हुआ होता है, हज़ारों को वह कुछ नहीं गिनता, उस की अपनी देह उसे सत्य रूप भान नहीं होती। वह अब देह या मन नहीं है और उस के लिये दुनिया का अस्तित्व अब नहीं रह गया, उत्साह [उल्लास] उठ खड़ा हुआ है और उसकी देह का प्रत्येक रोम परात्त परम में, जो देह, मन और सम्पूर्ण संसार का आधारभूत है, उसके निमज्जन की गर्जना कर रहा है। इस प्रकार, दर्शकों के लिए, अदम्य (Indomitable) साहस और शौर्यसम्पन्न शक्ति व्यापारमय जगत में अजेय की चपला-चमक (Lightning flash के तुल्य हैं। किन्तु जहां जहां तक स्वयं कर्त्ता का सम्बन्ध है, निर्भीक वीरता, अज्ञानता (Unconsciously) से धर्म से अधिक कुछ भी

नहीं है, अर्थात् पर्दे की ओट की शक्ति में लीनता है।

३—प्रेम शब्द कैसा प्यारा है। कहावत के अनुसार, हरेक व्यक्ति प्रेमी को प्यार करने को बाध्य है। शुद्ध हिन्दू के लिए अधिकांश दृष्टान्तों में प्रेम [भक्ति] ही एक मात्र अभीष्ट है। कुछ ऐसी श्रेष्ठ आत्माएं हैं जो सहर्ष सब कुछ और प्रत्येक वस्तु ईश्वर-भक्ति के लिए भेंट कर देंगी। हमें प्रेम के मूल स्रोत का पता लगाने की चेष्टा करनी चाहिए।

चैतन्य महाप्रभु या कवि वनयन सरीखे आदर्श भक्त अपनी असाधारण समाधियों या हर्षोन्मत्त प्रार्थनाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। और इस में यह कहना नहीं पड़ता कि इस अत्यन्त तीव्र ईश्वर-भक्ति के अर्थ हैं लज्जा के सब भावों का, अनुरोध या अनुरूपनता का, या संसार का अतिक्रमण और तुच्छ "मैं" के बंधन से मुक्ति (छुटकारा)। निम्नतर पदार्थों अर्थात् सांसारिक वस्तुओं से प्रीति के अनुभव से जो धन्य हुए हैं वे भी इस स्पष्ट विरोधाभास को प्रमाणित करेंगे कि तीव्रतम प्रेम प्रेमपात्र और प्रेमी की कल्पना को अतिक्रमण कर जाता है। इस प्रकार पूर्वोक्त भाव में प्रेम की धर्म से अभिन्नता निर्विवाद हैं।

४—परमानन्द [ecstasy, इक्सटेसी e(इ)=बाहर, और Sto (स्टो)=खड़ा होना] शब्द ही सूचित करता है कि सुख—वह चाहे जिन अवस्थाओं या दशाओं में अनुभव किया जाय—शरीर, मन और नाम रूप संसार से पृथक खड़े होने से (अर्थात् निस्संबन्ध होने से इतर कुछ भी नहीं है। अपने ही अनुभव को समझकर कोई भी व्यक्ति, चाहे थोड़े काल के लिये, सम्पूर्ण द्वैत से छुटकारा पाने पर सुख की एकता अनुभव कर सकता है। काम्य पदार्थ और प्रेमोपासक कर्त्ता का परस्पर एकाकार हो जाना ही हर्ष है। इस प्रकार प्रगट रूप

से सुख का स्वभाव ही धर्म है।

ये उक्तियाँ (वचन) स्पष्ट रूप से सिद्ध करती हैं कि जीवन के उच्च और वाँछनीय उद्देश्य केवल तभी प्राप्त होते हैं जब बुद्धि और उसके साथ ही सम्पूर्ण वाह्य जगत परात परम अज्ञेय में गल जाते हैं।

किन्तु यह सार्वभौम तत्त्व में एक गोता लगाना है, जिस तरह कोई किसी शब्द कोष की सहायता लेता है अथवा एक गोताखोर समुद्र में गोता लगाता है और थोड़े ही समय में मोती लेकर वाहर निकल आता है।

इन्द्रियों के सुख अपने सूक्ष्म रूप में यथार्थ में धर्म हैं, किन्तु उन में धर्म की उपलब्धि करने की शैली की तुलना मैली मोरी के सींकचों से दरबार की झलक देखने के समान हो सकती है। वे सुख हैं समान उस चपला की चमक के, कि जो, यद्यपि स्वभाव से दिन के प्रखर प्रकाश से अभिन्न है, तथापि हित की अपेक्षा कहीं अधिक हानि करती है। अथवा इस में अधिक ठीक यह है कि वे सुख प्रोमीथियस (Prometheus) की सी स्वर्ग से अग्नि की चोरी हैं।

कल्याणमय दरबार में क्या धर्म रूपी द्वार से प्रवेश करना सम्भव नहीं है? चिरस्थायी प्रकाशमान दिन होने के लिये क्या अर्धरात्रि की विद्युज्ज्योति को निरन्तर नहीं बनाया जा सकता? इस प्रकार की सहज इच्छा ही में धर्म की आवश्यकता, अपने साधारण अर्थ में, अवस्थित है। इस परिणाम के लिये प्रबल प्रयत्न करना उचित वा ज़रूरी है, और जो लोग धर्म के महत्व का तिरस्कार करते हैं वे अपनी इच्छा के विपरीत आत्मघाती प्रयत्न में प्रवृत्त हैं।

दर्शनशास्त्र या विज्ञान द्वारा अवर्णनीय में झाँकने के सब

प्रयत्न बुरी तरह विफल हुए हैं। देश, काल और वस्तु उन का चाहे आप आन्तरिक दृष्टि से विचार करें या चाहे बाह्य दृष्टि से, किन्तु अपनी प्रकृति का पता लगाने निमित्त सब उद्योगों को वे व्यर्थ करते हैं। पदार्थ, गति, शक्ति या पुरुषार्थ की वास्तविक प्रकृति जिज्ञासु चित्त के लिए अलंघ्य कठिनाइयाँ उपस्थित करती है। परमाणु-वाद असंगतियों से आकुल है, बोसकोविच का शक्ति के केन्द्रों का सिद्धान्त (Boscovich's theory of Centres of Force) भी, दूर पहुँच कर किसी सुगति को नहीं प्राप्त होता (अर्थात् किसी काम का नहीं रह जाता)। दुनिया की सब मत मतान्तर की विद्या (Dogmatic theology) के मुखड़े पर न्यूनाधिक अन्ध विश्वास की छाप लगी हुई है। तत्त्वज्ञान का एक क्रम दूसरे को उड़ा देता है, और फिर अपनी बारी में यह दूसरा कोई कसर उठा नहीं रखता। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति की अभ्यान्तर अवस्था सदा चित्त के लिए गूढ़ रहस्य बनी रहेगी और ब्रह्मांड की गहराई को नापना बुद्धि के अधिकार से परे है।

तब, क्या अधिष्ठान स्वरूप का अन्वेषण हमें गई-बीती आशा समझ कर त्याग देना चाहिए? क्या हमें अपना सम्पूर्ण पौरुष और शक्ति केवल रेल, तार, और तोप की बारूद सरीखे व्यावहारिक अनुसंधानों और रचनाओं (discoveries and inventions) में लगाना चाहिए? ऐसे खिलौने भी शान्ति या विश्राम नहीं देते। अधिकाधिक की तृष्णा ही, जो प्रत्येक नवीन अधिकार के साथ २ अवश्य आती है, लौकिक आकांक्षाओं की व्यर्थता की घोषणा ज़ोर से कर रही है।

ये विचार हमें घोर निराशा में पहुँचा देते हैं। उपनिषद कहते हैं, निराश मत हो। विश्राम की गहरी आशा व्यर्थ

नहीं होने की। चाहे जितने हठ से हम अपने नेत्र सच्चाई से मूँद लें, किन्तु सुखपूर्ण एकान्तता के क्षणों में यह प्रश्न बलात् हमारे हृदय में उदय होता ही है, "यह सब व्यापार कहां से निकलता है? मैं क्यों हूँ? पृथिवी और आकाश क्या सूचित करते हैं?"

वेद कहता है कि नस-नस में व्याप्त इस प्रश्न का अवश्य ही समाधान होना है, यद्यपि तत्त्वज्ञान, विज्ञान, या सांसारिक प्रेम के द्वारा नहीं। प्रश्न स्वयं अनिर्वचनीय माया (सम्पूर्ण संसार की न सुलझ सकने वाली पहेली) के अन्तर्गत होते हुए अवर्णनीय गूढ़ रहस्य का, जिसका उद्घाटन करना चाहता है, एक अंश है। जैसे एक गिद्ध जिस आकाश में वह उड़ता है उस से उड़कर बाहर नहीं जा सकता वैसे ही विचार सीमान्त प्रदेश का अतिक्रमण नहीं कर सकते। जब तक प्रश्न-कर्ता और प्रश्न-विषय पदार्थ बने रहेंगे तब तक माया के कारागार की दीवालें भी बनी रहेंगी और रूपों से ऊपर नहीं उठा जा सकता। विशेष प्रबोध (culture) के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है और उसकी प्राप्ति हो जाने पर प्रश्न और उत्तर का विसर्जन अवश्य है। साधारण सुख, अति हर्ष, प्रेम, इत्यादि से संयुक्त गुलाम बनाने वाली प्रथा से स्वतंत्र रह कर, वेदान्त इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करता है। ऐसे दिव्य दर्शन में मग्न पुरुष स्वयं चित्त या बुद्धि के लिए अज्ञेय, ब्रह्म है। जो मनुष्य ऐसे अनुभव की एक झलक भी पा जाता है, भय और चिन्ता से परे खड़ा होता है। अविचलित चरित्र-बल इस उपलब्धि या धर्म का अनिवार्य निष्कर्ष है।

इस लिए धर्म का प्रयोजन है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

छिद्रान्वेषण और विश्वव्यापी प्रेम।

भारतवासियों के मित्र और संसार को (राम का) एक संदेश।

जब कोई होनहार आन्दोलन उठाया जाता है तभी भारतवर्ष में दलबन्दी का भाव सर्वसाधारण के ध्यान को नेता के चरित्र के दोषों की ओर खींचता है। इस प्रकार प्रत्येक फूल कलिका-अवस्था अर्थात् नन्हीं अवस्था में ही नष्ट कर दिया जाता है। किन्तु किस में त्रुटियां नहीं हैं? [स्वामी विवेकानन्द के पुष्ट और आशाजनक प्रयोगों (विचारों) तथा स्पष्ट उपदेशों का स्वामी जी के खान-पान की आदतों को और भी स्पष्टतर विशेषता प्रदान करके, तिरस्कार किया जाता है। एक आपत्ति-जनक व्यवहार (आचार) सर्व साधारण के सामने उद्घाटित करके, जो वास्तव में उन का नहीं था, काशी के स्वामी कृष्णानन्द जी पंगु वा गतिहीन (Crippled) कर दिए गए हैं]।

जो मनुष्य इन (साधारण-धर्म आन्दोलन और धर्म महोत्सव के) कामों में अगुआकार हुआ था, उस पर आरोपित व्यक्तिगत त्रुटियों के बहाने से साधारण धर्म-आन्दोलन और धर्म महोत्सव के अधिवेशनों को न करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। गधे से गिर पड़ने पर गधे के हाँकने-वाले से झगड़ना, निस्सन्देह यह विलक्षण तर्क है।

उस दिन राम ने एक दूध बेचने वाले छोकरे [लड़के] को एक घर में दूध की कुछ बोतलें लिये जाते देखा। संयोग से एक बोतल उसके हाथ से फिसल पड़ी और टूट गई।

वह क्रोध से भभक उठा और बाक़ी बोतलें भी उसने सड़क पर पटक दीं।

एक दूसरे से, अपने बर्ताव में लोग ठीक ऐसा ही करते

हैं। किसी एक विशेष मामले में किसी मित्र में नन्ही त्रुटियाँ को देख कर उस के अच्छे लक्षणों के लिए सम्पूर्ण आदर को दूर कर देने की हमारी कैसी प्रबल प्रवृत्ति है!

जल-गणित विद्या (Hydrostatics) में कुल दबाव (Total pressure) और लब्ध दबाव (Resultant pressure) के विषय हमारे पढ़ने में आते हैं। किसी पिंड पर कुल दबाव अनन्त और लब्ध दबाव शून्य (nil) हो सकता है। भारत में बहु संख्यक शक्तियों का कोई लब्ध दबाव नहीं होता, क्योंकि एक दूसरी के विरुद्ध स्थित होने से वे अकारथ जाती हैं। क्या यह करुणा-जनक नहीं है? कारण क्या है? यही कि हरेक दल अपने पड़ोसी के दोषों पर अपना ध्यान एकाग्र करता है। इस प्रकार मेल नहीं हो सकता, और यह सन्देह-मूलक एकाग्रता ही आपत्ति के योग्य चरित्रों को उपजाने में दुष्ट शक्ति का काम देती है। "किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लग जायगा", यह निर्विवाद स्वतः सिद्ध वचन (truism) है।

क्या कोई सामान्य आधार (खड़े होने को) नहीं है? क्या हमारे पड़ोसियों में कोई प्रशंसनीय गुण नहीं हैं ? क्या भारत के विभिन्न दलों में एकता का कोई बन्धन (धागा) नहीं है? शुद्धता या अशुद्धता के नाम में, ईश्वर की खुफ़िया पुलिस के स्वयं-निर्वाचित सदस्यों का अभिनय करने का और उस मनुष्य के निजी (प्राइवेट) चरित्र में झाँकने का हमें क्या अधिकार है जिस का कि सार्वजनिक चरित्र देश के लिए उपयोगी हो रहा है? अपने व्यक्तिगत आचरण का हिसाब वह अपने परमेश्वर को आप देगा। हम हस्तक्षेप करने वाले कौन हैं? दूसरों के गुण दोषों पर विचार करने में हमारी जितनी शक्ति का अपव्यय होता है, वह हमें अपने

आदर्शों के अनुसार जीवन निर्वाह करने के लिये आवश्यक है। क्या बाहरी विवशता मनुष्य को एक तिनका भर भी अधिक सदाचारी बना सकती है? अथवा क्या अनुवर्ती (Conforming-सादृश्य) लोकमतानुसार (Conventional) प्रशंसाकांक्षी आचरण शुद्ध-पवित्र कहा जा सकता है? ऐसे आचरण को पवित्रता से एक न करो। यह दुर्बलता है। कांटों के कारण हम गुलाब को त्याग नहीं देते। एक हलवाई चाहे भूसी खाकर बसर करता हो, किन्तु इस कारण हमें उस की बनाई मिठाई खाने से नहीं रुकना चाहिए। न वह वस्तु जो मनुष्य के भीतर (पेट में) जाती है (दूसरे) मनुष्य को भ्रष्ट ही कर देती है, किन्तु उस से जो निकलती है वह उस (दूसरे) को बिगाड़ती है। यदि स्वामी विवेकानन्द किन्हीं वस्तुओं को खाते और पीते हैं तो क्या हुआ? जब तक उन से उत्तम उपदेश आते हैं, तब तक हमें परवाह नहीं कि उन में प्रवेश क्या कर रहा है। शिक्षक के व्यक्तित्व का खयाल किये बिना, हमें किसी मनुष्य की सलाह और शिक्षा के गुण-दोषों को परख कर उन्हें ग्रहण करना चाहिए। रेखागणित के तत्वों (Elements of Geometry) से यूक्लिड (Euclid)* के व्यक्तित्व का क्या सरोकार है? चित्रकार कुरूप था, इस लिए क्या हमें उस के सुन्दर चित्र का तिरस्कार कर देना चाहिए? सर फ्रांकिस बेकन (Sir Francis Bacon) के घूसखोर होने के कारण क्या हमें उस के व्याप्तिवाद वा आगमन शास्त्र (Inductive Logic) को फेंक देना चाहिए? अब इस बीसवीं सदी में तो यह उत्तम समय है कि हम विवेक-बुद्धि को जागृत करें और व्यक्तियों को उन के उपदेशों से न मिलावें। मैली गढ़ैया में

* वर्तमान ज्योमेटरी (Geometry) का पाश्चात्य रचयिता।

उगने के कारण क्या हमें सुन्दर कमल का तिरस्कार कर देना चाहिए?

भारत की दीनता का सब से बड़ा कारण कूड़े का निकाल बाहिर फेंकना, मृतक पशुओं की हड्डियों को छूने से भय करना और एक प्रकार के नासिका-आरोग्य विज्ञान (Nose hygiene) की उन्नति करना तथा सब प्रकार के कर्कट-ढेरों पर नाक-भौं सिकोड़ना है। और इन्हीं तुच्छ चीज़ों का उपयोग ही यूरोप और दूसरे सभ्य देशों को बड़ा बनाता है। सुन्दर पुष्प-वाटिकाएँ क्या मैली खाद से नहीं तैयार की जातीं? अत्यन्त काला धुँआ और मैला कोयला, इन का सदुपयोग होने से, लोहे के यंत्रों में और अमेरिका तथा यूरोप के दूसरे कारखानों में अद्भुत शक्ति को उत्पादन करते हैं।

नीच बन्दरों को अद्भुत सेना में परिणत कर देने ही में राम की बड़ाई थी। पवित्र और विशुद्ध आत्मा से कौन मिल-जुल कर नहीं रह सकता? किन्तु महात्मा वही है जिस की विशाल सहानुभूति और मातृवत हृदय पापियों और नीचों को भी अपनी विस्तृत लपेट में आलिंगन कर लेता है।

पाकशाला के, तुच्छ क्षुद्र अंध विश्वासों के धूलि-झंझावात (dust storm) में शुद्धात्मा के सूर्य को ग्रहण लगाने के यत्न में अपने जीवन का अपव्यय कर के हमें आध्यात्मिक और शारीरिक दोनों के अधःपतन का सामान न करना चाहिए। निस्सन्देह शोचनीय है रसोई-धर्म, जो अनन्त, अमर आत्मा को विदेशी की दाल से मलिन होने देता है। कृपया जीर्ण और फटे जाति-वस्त्रों के नीचे ज़रूर देखिए। तुम क्या हो? सब का अनन्त, अनघ और अमर आत्मा तुम्हारा आत्मा है। वास्तव में इस आन्तरिक समता की उपेक्षा

(अज्ञानता) ही संसार के सब ज़ाहिरा दोषों को उत्पन्न करती है।

पथभ्रष्ट, सनकी आचारोपदेशक (moralist) अपने पड़ोसियों के व्यक्तिगत आचरणों की निन्दा और विरोध करने में केवल नदी (धारा) के ऊपर से झाग और फेन के दूर करने की चेष्टा करते हैं, यद्यपि असली कारण, अर्थात् तले (पैंदे) की विषमता (unevenness) तक वे विलकुल नहीं पहुँचते।

जिन का अधःपतन हो चुका है उन के उद्धार के लिए दौड़ धूप करने वाले तुम कौन हो ? क्या स्वयं तुम्हारा उद्धार हो चुका है ?

क्या तुम जानते हो कि जो अपने निजी जीवन को बचावेगा उसे वह (वाह्य जीवन) खो देना पड़ेगा। तब क्या तुम जीवन-मुक्तों में से एक हो ? क्या तुम जीवन-मुक्तों में से एक हो सकते हो या होगे ? तब, उठो और उद्धारक हो जाओ।

बुद्ध भगवान् प्रायः एक वेश्या (गणिका) के घर में अतिथि हुआ करते थे। "हू विल कास्ट दी फर्स्ट स्टोन (Who will cast the first stone; ? पहला ढेला कौन फेकैंगा ?) " का प्रवर्तक मेरी मेगडालीन, (Mary Magdalene) की, जो कदापि 'इज्ज़तदार' नहीं थी, संगति से लज्जित नहीं था। अरी अप्रतिष्ठ प्रतिष्ठा ! जब तक हम एक दूसरे के दोषों पर ज़ोर देते रहेंगे तब तक किसी देश में प्रेम और मेल नहीं हो सकते। जीवन के सफल कौशल का रहस्य अपने में माता का हृदय उत्पन्न करने में है कि जिस के लिए अपने सब बच्चे सयाने और अयाने सुन्दर हैं। सच्ची शिक्षा का अर्थ है विश्व को परमेश्वर के

नेत्रों से देखने की शिक्षा प्राप्त करना।

हरेक व्यक्ति को हरेक दशा में होकर गुज़रना पड़ता ही है, और जैसे जन्मतः (शरीर से) हरेक को शिशु अवस्था (babyhood), बालावस्था (childhood) इत्यादि पार करना पड़ती है, ठीक उसी तरह नैतिक और आध्यात्मिक जगत में भी शिशुता और बाल्यकाल आवश्यक, बल्कि अनिवार्य अवस्थाएँ हैं। पापी कहे जाने वाले मेरे नैतिक बच्चे (moral babies) हैं, और क्या बच्चे की अपनी छवि निराली नहीं होती? जिन्हें तुम भ्रान्तिवश "पतित" कहते हो उनका अभी "उत्थान नहीं" हुआ है। वे विश्व-विद्यालय के नवागत (विद्यार्थी) हैं, जैसे तुम भी कभी थे।

कुछ लोग विश्वव्यापी प्रेम के बारे में बहुत हो-हल्ला मचाते हैं, किन्तु फिर भी अपने नेत्रों को अपने आश्रितों (शरणागतों) के चरित्र के दोषों पर गाड़े रखते हैं और इस असंगित को इस वचन "तुम पाप से घृणा करो और पापी से प्रेम करो" की छाया में छिपाते हैं।

ऐ प्रिय भारतवासियो! जब तक तुम किसी में भद्दापन (दोष) देख रहे हो तब तक तुम उस से कभी प्रेम नहीं कर सकते। प्रेम के अर्थ हैं सुन्दरता का देखना वा भान करना।

अन्धकार से लड़ाई लड़ने से वह कभी न दूर होगा। एक अँधेरे कमरे में यदि हम सब ओर ढेले फेंकें, दहने और बाँए डंडा फटकारें, (अलमारी या दरवाज़े के) कांचों को चूर करें, मेज़ पर लुढ़कें (वा मेज़ को उलटा पुलटा करें), स्याहीदान (दवात) उलटें, और बराबर कोसते तथा निन्दा करते रहें, तो क्या इस से अन्धकार दूर हो जायगा? भीतर प्रकाश लाओ, और अँधेरा कभी था ही नहीं। इस प्रकार निषेधार्थक छिद्रान्वेषण (Negative criticism), तेज को

ठण्डा करने वाली, उत्साह को मन्द करने वाली प्रक्रिया से कभी मामला न सुधरेगा। आवश्यकता है केवल असंदिग्ध, प्रफुल्लित, आशाजनक, प्रेमपूर्ण, उत्साह-वर्द्धक भाव की। यदि नालियों का सब कीचड़ सड़क पर फैला दिया जाय तो क्या कोई अच्छा फल होगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार दूसरों के दोषों पर ज़ोर देने से भी कोई भलाई न होगी। शान्ति और सद्भाव रूपी ताज़े जल की बहती हुई धारा नाली में बहने दो और सारी गंदगी धुल जायगी। कहा जाता है कि अकबर ने एक लकीर खींच कर अपने बुद्धिमान पुरुष बीरबल से कहा कि इस लकीर को किसी ओर से बिना काटे या मिटाये के छोटा कर दो। बीरबल ने उसी के बराबर एक बड़ी रेखा खींच कर अकबर की रेखा छोटी कर दी। यही ढंग है। बड़ी रेखा खींचना बुद्धिमानी है। जिस तरह बीरबल ने अकबर को भीतर से विश्वास करा दिया था कि उस की रेखा छोटी होगई उसी तरह लोगों को भीतर से उस का बोध करा देना ही, कि जिस का तुम उन्हें बाहर से अनुभव कराना चाहते हो, सर्वोत्तम छिद्रान्वेषण (गुण-दोष-विवेचन) है। सारा गुर्राना वा विलाप केवल इसी कथन के बराबर है कि "अरे! भूमि-कमल (lily-गुले सोसन) सिंदूर वृक्ष (oak-शाह-बलूद) क्यों नहीं है!"। हमें हरेक वस्तु की सुन्दरता देखना चाहिए। "बुरों पर भौंको मत, किन्तु भलों की सुन्दरताओं को बखानो"। मैं सब जीवन के अंगूरों से मधुर मद्य निकालता हूँ।

प्यारे छिद्रान्वेषक! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, किन्तु जिस में तुम छिद्र निकालते (वा दर्शाते) हो, उस का भी मैं उतनाही आदर और प्यार करता हूँ।

संग्राम ।

जीवन-संग्राम (Struggle for existence) में कौन विजयी होता है ? प्रेम ।

जो समाजें अपने हृदयों को एकत्र कर सकती हैं, अपने मस्तिष्कों को एक स्वर में बाँध सकती हैं, और अपने हाथों को प्रेमपूर्ण सेवा में लगा सकती हैं, उनकी जनसंख्या चाहे थोड़ी ही हो, वे ही विभक्त शक्तियों वाले करोड़ो मनुष्यों से संग्राम में जीतती हैं ।

संग्राम तीन प्रकार का है:—(१) असमान से, (२) समान से, और (३) प्रकृति के विरुद्ध ।

ईर्ष्या, प्रतिवादिता की वृत्ति, और दलबन्दी के भाव के कारण अपने समान से संग्राम करने में पौरुष का अपव्यय करने के बदले जहां समान से मैत्री स्थापित करली जाती है, वहां असमान से संग्राम में विजय की प्राप्ति निश्चित है ।

"सब प्रकार के अत्याचारों का प्रारम्भ दयालुता में है", यह बड़ी ही सच्ची कहावत है ।

और जहाँ असमान के लिए भी प्रेम का पोषण किया जाता है, वहां प्रकृति से हमारे संग्राम में विजय और सफलता निश्चित है, तथा महा तत्वों पर विजय पाना सहज हो जाता है । और प्रकृति से यावत संग्राम इस स्थूल जगत में यह तत्व अनुभव करने के बराबर है कि "मैं सब का शासक आत्मा हूं" ।

छिद्रान्वेषण की वृत्ति संसार में इतनी प्रबल क्यों है ?

छिद्रान्वेषण (किसी में दोष देखने) की वृत्ति कटु (अप्रिय वा आक्रमणात्मक) जान पड़ती है, किन्तु अधिकांश

में रक्षणात्मक रूप आत्म-रक्षा के कारण से यह होती है। किसी स्वभाव या अभ्यास को छुड़ा देने के लिए, सब बुरे परिणामों को प्रदर्शित करने वाली तीव्र समालोचना (sharp criticism) आवश्यक है। जब हम दूसरों को उस आदत से पीड़ित देखते हैं तब स्वभावतः संक्रमण के भय से, हम उनकी संगति से बचना चाहते हैं। नई आदत और दृष्टि के बनने के साथ में प्राचीन (आदत वा दृष्टि) का टूटना लगा हुआ है, और जब तक दुनिया में उन्नति की कोई गुंजायश है तब तक तुलना और समालोचना की वृत्ति Spirit of criticism and comparison) बनी रहेगी। यह समालोचना और तुलना करने वाली वृत्ति अवांछनीय नहीं है, और न उस का मूलोच्छेद ही संभव है, किन्तु अवांछनीय है उसका हलाहल (उस में विष), जो संबन्धित पक्षों में केवल व्यक्तित्व का भाव जगा रहा है। हमें वेध्य (vulnerable) क्षुद्र "मैं" को दूर फेंक देना चाहिए जो अकेला हम में और दूसरों में पाप को निमार्ण करता है ; और तब सब पीड़ा से चंगे होकर हम अपने इर्द-गिर्द के सब कर्मों और पुरुषों को वैज्ञानिक उदासीनता और रासायनिक या वनस्पति शास्त्रज्ञ की तात्विक शान्ति से, हरेक वस्तु को अत्यन्त शान्त चित्त से, यथार्थ रूप से और सूक्ष्मता से जाँचते हुए, अपने निरीक्षण-अधीन पौधों और रस द्रव्यों [chemicals] में उलझ जाने के भय से रहित होकर परख सकते हैं, सूर्यवत् साक्षी रूप से स्योति पुष्प (briars) और गुलाबों, ऊसर और बगीचों, नरों, नारियों, पशुओं, पौधों, चींटियों और मेघों, सब को सहायता दे सकते हैं तथा सब को ताक सकते हैं।

महामारी से बचने का एक मात्र उपाय आरोग्य शास्त्र

[hygiene] के नियमों की पालना है। विदेशी राजनीति से रक्षा पाने की एक मात्र औषधि आध्यात्मिक अरोग्यता के क़ानून अर्थात् अपने पड़ोसी के साथ प्रेम करने के नियम के अनुसार जीवन यापन करना है।

यदि केवल उचित त्याग हम कर सकें, तो समृद्धिशाली होना भी उतना ही सहज है जितना कि दुर्दशा ग्रस्त होना। "बलिदान [त्याग] आफ़त को टाल देता है", यह कहावत आज भी उतनी ही सत्य है जितनी सुन्दर पुराने ज़माने में थी, किन्तु यह केवल स्थानापन्न निरपराध पशुओं का बलिदान नहीं, बल्कि हमारे दलबन्दी की वृत्ति, जाति भेद की भावनाओं, डाहों [ईर्ष्या] इत्यादि का, प्रेम की वेदी [मण्डप] में यज्ञ या हवन है, जिस से हमें इस लोक में स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

छिद्रान्वेषित (Criticized) पुरुष के प्रति।

छिद्रान्वेषण [गुण-अवगुण परीक्षा] समभारकारी [equilibrator] के समान आती है। वह परमात्मा की काट-छाँट की प्रक्रिया है, जो हमें अधिक सुन्दरता से बढ़ने में सहायता देती है। समालोचना [छिद्रान्वेषण] की क़ैंची का आगमन होने पर ज़रा घूम कर देखो कि तुम्हारे भीतर क्या बीत रही है। [उस समय तुम में] क्षुद्र भावनाओं में उतरने की प्रवृत्ति अवश्य रही होगी, तभी यह चेतावनी [warning] है। अज्ञात समुद्र की ओर वेगवती धारा में बहती हुई चट्टानों से घिरी हुई संक्षुब्ध नदी में, हलकी डोंगी पर सवार मनुष्य की स्थिति के नाना भय चौकन्ना बनाये रखते हैं। जब उसकी नौका चट्टान से भिड़ कर तड़तड़ाती है, तब वह अवश्य चौकन्ना हो जाता है।

यदि यह मुठभेड़ उपयोगी न होती तो वह इस की परवाह न करता। जिसे हम पीड़ा मनाते हैं वह खतरे की आवश्यक सूचना है। सजीव प्राणियों को सत्य शीलता के लिये ऐसे उत्तेजनों की ज़रूरत है।

मित्रों या शत्रुओं की कष्टकर समालोचना [गुण-दोष विवेचना] तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप, परमेश्वर में जगाने वाली स्वप्न का हौवा है। तुम्हारे जाग पड़ने पर स्वप्न का जू जू [हौवा] कहां रह जाता है? वह कभी नहीं था। प्रेम के क़ानून के सम्बन्ध में ज्यों ही हम अपने को ठीक कर लेते हैं, त्यों ही सारी हानियां पक्के लाभ में परिणत हो जाती हैं। बेचारी सिंडेरला [Cinderalla] ने अपनी पादुका [जूतियाँ], खो दीं, उस की निर्दोषिता ने जूतियों को लौटा लिया और अंत में आजीवन संगी सम्राट मिल गया।

किन्तु जब सर्व से हम अभेद हैं, तब जाल-साज़ हमारे पास आने का साहस नहीं कर सकते। चोर किसी घर में केवल तभी घुसते हैं जब वहां अँधेरा होता है। जो मनुष्य लोगों का नेता होने की योग्यता रखता है वह सहायकों की मूर्खता, अपने अनुयायियों की अश्रद्धा, मानव जाति की अकृतज्ञता, सर्वसाधारण की गुण-अग्रहणता (non-appreciation) की शिकायत कदापि न करेगा। ये सब बातें जीवन के महान कौतुक का अंग हैं और इन से सामना करना तथा निरुत्साहित हो कर और हार मान कर इन के सामने अवनत न होना ही शक्ति का अन्तिम प्रमाण (final proof) है। अनावश्यक रगड़, मन की बेपरवाह-पूर्वक घिसन और जर्जरता (wear and tear) से बच जाने पर कौन सा काम अधिक संतोषजनक रीति पर नहीं पूरा हो सकता?

O Love, Sweet Love,
For ages and ages Thou gavest me the dor.
Now hiding behind the foes and friends,
Now disappearing in the criticisms and praise.
Now lost in pleasures and pride,
Concealed in troubles and pains,
Then out of sight in life's hard trials,
Forgotten in the midst of losses and gains.
O Love! Sweet Love!
For ages and ages Thou gavest me the dor.

Percussions, concussions of trials and joys,
Hard blows and knocks, all smiles and sighs,
With a wondrous chemistry, with a strange Electricity,
A purifying process, a disengaging analysis,
From loves and hatred, concerns, attachment, clingings,
Repulsions, from the ore of passions,
Brought out of my heart, a Radium of Glory,
O what A strange story!
O Love, Sweet Love,
For ages and ages Thou gavest me the dor.

ऐ प्रेम ! ऐ मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।
कभी मित्रों और शत्रुओं के पीछे तू लुकता है,
कभी प्रशंसा और विपरीत आलोचना (निन्दा) में तू गायब
हो जाता है।

जब सुख और गर्व में तू भूल जाता है,
दुखों और पीड़ाओं में तू छिप जाता है,
तब तू जीवन की कठिन परीक्षाओं में अदृश्य हो जाता है,
हानियों और लाभों के बीच में तू विस्मृत हो जाता है,
ऐ प्रेमात्मा ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

मुसीबतों और हर्षों के आघात और धक्के,
सब कठिन प्रहार और ठोकरें सब मुसकानें
और आहें,

सहित अद्भुत रसायन-शास्त्र और
विलक्षण विद्युत के,

शोधक प्रक्रिया और पृथक कारी विश्लेषण से,
प्रेम और द्वेष, संघर्षों, अनुराग, और
लगनों से,

निराकरण से और मनोविकारों की खान से,
मेरे हृदय से निकाल लाए, प्रकाश की देदीप्यमान किरण,
अरे कैसी अद्भुत यह कहानी है !
ऐ प्रेम ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

From my Radium of heart,
X Rays do start,
To the objects of all sorts
Transparency impart
On all sides and parts.
What a marvellous Art !
O Love, Sweet Love !
For ages and ages Thou gavest me the dor.

Sarcasms so sharp,
All shakings and props ;
Foes, friends, and shops
Your hiding walls
No more opaque,
Reveal you all.
O jewel of jewels !
My self, Radium pure,
Thou burnest as fuel
All caskets and purses,
Valice, trunks and curses,
Doors, locks and boxes—
All possessions obnoxious.
O Truth, Radium pure !
O Self, omnivorous sure !
O Love, Sweet Love !
For ages and ages Thou gavest me the dor.

मेरे हृदय की देदीप्यमान रश्मि (रेडियम्; Radium) से
एक्स रेज़ * निकलती हैं,
सब तरह के पदार्थों को;
सब ओर और भागों को;
पारदर्शिता प्रदान करती हैं।
कैसा अद्भुत कौशल (हुनर) है !
ऐ प्रेम, मधुर प्रेम,
युगों से तू मुझे झांसा दे रहा है !

अति तीखे ताने (सनिंद उपालंभ)
सब हिलोरें (आकुलता) और अवलंभ (आश्रय, आधार)
शत्रु, मित्र और दूकानें
तुम्हारी छिपाने वाली दीवालें,
जो अब अपारदर्शक नहीं रहीं,
सब तुम्हें व्यक्त (प्रगट) कर देती हैं।
रत्नों के रत्न !
मेरे आत्मा, विशुद्ध महाप्रकाश स्वरूप (रेडियम्) !
तू ईंधन की भांति जलाता है
सब डिबियां और थैलियाँ,
वेलिस (valice), पेटियां और अभिशाप,
कपाट, ताले और बकस—
सब अधीन मिलकियतें।
ऐ सत्य स्वरूप विशुद्ध रेडियम् !
ऐ निश्चित सर्व भक्षी स्वरूप !
ऐ प्रेमात्मा, ऐ मधुर प्रेम स्वरूप !
युगों और युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

*x--Rays; (अनुसंधान कारिणी प्रकाश किरणें)।

स्वच्छ-दृष्टि ।

बच्चे हरेक वस्तु को मूर्तिमान करते हैं। उन्हें मेघ की गरज सामने के किसी क्रुद्ध मनुष्य की घुर्घराहट (गर्जन) से इतर कुछ भी नहीं है। इसी तरह बड़े बच्चों का जिन से संसर्ग होता है, उन सब को वे जमा हुआ व्यक्तित्व का भाव प्रदान करते हैं। जब कोई वस्तु स्पष्टरूप से गलत (पथ-भ्रष्ट) हो रही है, तब प्रेम के क़ानून से अपना सम्बन्ध ठीक करने के बदले परिस्थिति से हमारा बखेड़ा करना ऐसा है जैसा कि अदृश्य सिरे पर बैठे मित्रों से बुरी खबर सुन कर टेलीफोन को तोड़ डालना।

आस्ट्रेलिया के कालों (काले पुरुषों) का विश्वास है कि गूढ़ मंत्र प्रयोगों (अभिचारों) और वैसे ही दूसरे उपायों द्वारा जिन्हें 'मेलका' [Melka] कहा जाता है, वे स्वयं पानी बरसाते हैं। एक विख्यात आचार्य कहता है कि "जब हम यात्रा में थे तब अन्युग्र उष्ण देशीय वृष्टि-तूफानों [violent tropical storms] से हम घिर गए, मेरे काले (अनुचर) अजनबियों (दूसरे काले मनुष्य जिन्हों ने वर्षा की थी) पर बहुत बिगड़े"। जो अपने पड़ोसियों के अपराधों पर किसी रूप से विकल और परेशान होते हैं उन का अज्ञान इन आद्य कालियों के प्राचीन, तमसाच्छन्न अज्ञान का सा है। वृष्टि होती है और इस वृष्टि का आधार वा कारण प्रकृति के भावात्मक (impersonal) क़ानून के सिवाय और कुछ नहीं है। फूल खिलता है और उसी भावात्मक क़ानून के प्रादुर्भाव के सिवाय और कुछ नहीं है। इसी तरह जुदास (Judas) इसे जानता नहीं, किन्तु उस की भेद खोलने वाली चुम्बी में प्रेम के नियम के अतिरिक्त और कोई भी पूर्ण शक्ति

से उस में काम नहीं कर रहा है। उस मिथ्या चुम्बी के बाद तुरन्त जो कुछ हुआ उस के बिना ईसा को अब तक कौन याद रखता ?

सुन्दर जोज़ेफ़ (Joseph) अपने क्षमाप्रार्थी भाइयों से कहता है, "मुझे कुँए में फेंकने वाले तुम नहीं थे। प्रेम स्वरूप प्रभु ने, मिश्र (Egypt) में मुझे उच्च स्थान देने के लिए, मेरे सगे भाइयों से बढ़कर प्रेमी किसी को नहीं पाया"।

प्रत्येक वस्तु मेरे पोरों पर इतनी परिवर्तन शील, शीघ्र-गामी और पिघलती हुई जान पड़ती है, कि मैं किसी पदार्थ को स्थिरता और व्यक्तित्व का जामा (भाव) नहीं पहना सकता। फिर मैं छिद्रान्वेषण कैसे कर सकता हूँ ? चपला [बिजली] की चमक में पूरे वेग में चलती हुई रेलगाड़ी अथवा जाता हुआ मेघ दिखाई देता है। हम उसे अचल या स्थिर समझते हैं। किन्तु उस के सम्बन्ध में हमें अधिक ज्ञान होने पर हम कुछ और ही समझते हैं। इसी तरह लोग माया के चंचल प्रकाश में वस्तुओं को देखते हैं, और उस अधार पर स्थिरता, व्यक्तित्व तथा मिलकियतों का भाव उन का स्थित है। इसी को सांसारिक बुद्धिमत्ता कहा जाता है। नित्य-सत्य-स्वरूप और आन्तरिक अनन्त-स्वरूप के प्रकाश में वस्तुओं को देखो, और फिर अमर [नित्य] शान्ति के साथ तुम्हारी एकता है।

मानव जाति के तर्क-वितर्क और वादानुवाद सदा व्यर्थ सिद्ध होते हैं। बहस से भेदों के मिटाने के सब प्रयत्न फूट, असंतोष, और बेचैनी पैदा करते हैं। क्यों ? विशाल भवन उठाने के पहले नींव ठीक तरह पर नहीं रक्खी गई। पहले हृदय को वश [क़ाबू] में करो, तब बुद्धि पर प्रभाव डालो। जहां युक्ति की कुछ नहीं चलती, वहां प्रेम को आशा हो

सकती है। कहानी में उस पथिक से हवा कोट न उतरवा सकी किन्तु गर्मी ने उतरवा लिया।

लोग विचार और मत की एकता के लिए बहुत उत्सुक हैं। वे आत्माओं की एकता की प्रत्याशा नहीं करते। [अंग्रेज़ी शब्द "अंडर-स्टैंडिंग" (under-standing) का यहां पर प्रयोग हुआ उस का पद-छेद इस प्रकार है] 'अंडर'=तले, और 'इस्टैंडिंग=खड़ा होना अर्थात् तले खड़ा होना, अथवा वाह्य रूपों और प्रतीत होन वाली चित्त वृत्तियों के तले स्थित होना। यह प्रेम द्वारा सम्पन्न होता है। जब तक तुम सर्व का भान [अनुभव] नहीं करते, तब तक तुम सर्व को जानते नहीं। तुम्हें सोचने की उतनी ज़रूरत नहीं है जितनी डूबने (अर्थात् भीतर पैठने) की। यदि प्रेम क़ानून भंग करता है तो वह क़ानून की पूर्ति है। यदि कोई दूसरी वस्तु क़ानून भंग करती है तो वह विप्लव और उन्मत्तता है। प्रेम ही एकमात्र दैवी विधान है। दूसरे क़ानून तो संगठित डकैती हैं। केवल प्रेमको क़ानून तोड़ने का अधिकार है। प्रेम के द्वारा स्वामित्व दैवी है; क़ानूनी स्वामित्व ग़ैर क़ानूनी है।

भारत के राजनीतिज्ञो! तुम विरोधी समालोचना करने और दिलजली शिकायत के उपाय से काम लेते रहे हो, किन्तु अवस्था प्रति दिन बिगड़ती ही जा रही है। अब हमें ठीक उपाय से काम लेने का यत्न करना चाहिए। यदि दूसरे पक्ष ने अन्याय किया तो बदले में अन्याय करने से केवल पहली कालिस में एक कालिस और बढ़ जायगी, किन्तु वह उसे सफ़ेद न करेगा। एक वयोवृद्ध सज्जन एक लड़के के चपेटा लगाने वाले थे, क्यों कि उस ने उन का अपमान किया था। उन्हों ने कहा, "मूर्ख! तू ने बत्तमीज़ी क्यों

की ?" लड़के ने उत्तर दिया "महाराज ! आप के कथनानुसार 'मूर्ख' होने के कारण मैं ने शरारत की। पर आप तो बड़े बुद्धिमान हैं, अपने योग्य आप वर्ताव कीजिए"।

जब कोई बिजली-भरा पिंड दूसरे पिंड के संसर्ग में नहीं, किन्तु केवल निकट में आता है, तब दूसरे पिंड पर जो प्रभाव पड़ता है उसे अनुमान (व्याप्ति साधन) द्वारा भरना (charge by induction) कहते हैं, अर्थात् बिलकुल उलटी तरह की बिजली उत्पन्न हो जाती है। सजातीय भराव वास्तविक संसर्ग से ही होता है। अतएव, जाति और गोत्र की भावनाओं की काँच की टट्टियों के रहते हुए (जो हृदयों का मेल नहीं होने देतीं), जब तुम युक्ति और तर्क द्वारा मामलों को निपटाना चाहते हो, तब तुम भयावह समीपता में आजाते हो। होने-वाला परिणाम तुम्हारे इच्छित परिणाम के पूरा विपरीत होता है। तुम किसी मनुष्य को जान नहीं सकते जब तक पहले तुम उसे प्यार न करो।

जहाँ युक्ति की दाल नहीं गलती, वहाँ प्रेम को आशा हो सकती है।

धर्मों मतों, और उपाधियों को लोग केवल गले में तावीज़ों की तरह धारण करते हैं। सब प्रकार के गुण और शक्ति उन में आरोपित की जाती है, तथापि जो थोड़ी बहुत सफलता हमें अन्त में होती है उस का उन लाड़ले मंत्रों (तावीज़ों) से कुछ भी सरोकार नहीं होता। हमें अपने मनुष्यत्व का पुनरुद्धार करना चाहिए और उन प्रिय अंधविश्वासों से ऊपर उठना चाहिए। नामों और रूपों के उन खिलौनों से तुम कब तक चिपटे रहोगे ?

हाँ, तुम्हें एक के बाद एक अपने सब दुलारे आग्रहों (पक्षपात), मिलकियतों, लगनों, अनुरागों को त्याग

देना चाहिए। तुम्हारी मिलकियतें तुम को घेरती और तुम पर अपना अधिकार जमाती हैं। पहले अपने आप को सुरक्षित किये विना तुम किसी को दुःखों के गढ़े से बाहर नहीं कर सकते। इस पीड़ा-कर नग्न-कारिणी लूट में आनन्दमय सफलता का भांडार छिपा हुआ है। राम के लिये ईश्वर का सब से प्यारा नाम 'हरि' है, जिसके शब्दार्थ हैं लुटेरा। ऐ मधुर हरि! कुछ लोगों को शायद यह आपत्ति हो "ओह! यदि मैं प्रेम करूँ और शत्रु से दब जाऊँ तो वह मुझे खा जायगा"। राम कहता है, "ऐ तू माया-मुग्ध प्रवंचक [कपटी] क्या कभी वास्तव में तू ने इस प्रयोग की परीक्षा की"?

जीवन के सब द्वारों पर लिखा हुआ है "pull" [पुल, खींचो वा घसीटो], किन्तु तुम ग़लत पढ़ते हो और "push" [पुश; धक्का] देने लगते हो। ऐसी अवस्था में दरवाज़ा कैसे खुलेगा? [pushing] धक्का देना तर्क-वितर्क करना है। [pulling] खींचना वा घसीटना प्रेम के द्वारा अपने भीतर खींचना है। हृदय तो प्रेरणा के महोत्सव-दालान [jubilee hall] का प्रवेश-द्वार है। शिर निकास है। प्रेम प्रेरणा करता है, शिर व्याख्या करता है। भावनायें वा मनोवृत्तियां सदा सोचने से पहले आती हैं, जैसे शरीर वस्त्रों से पहले होता है। किसी व्यक्ति की भावनाओं को बदल दो, उस की सोचने की पूरी शैली में सर्वथा परिवर्तन हो जाएगा।

जीवन क्या है? विघ्न-बाधाओं की शृंखला [आवली वा माला]। हाँ, जो जीवन के ऊपरी भाग पर रहते हैं उन के लिए वह [जीवन] ऐसा ही है, किन्तु जो सच्चा जीवन [या प्रेम] व्यतीत करता है उसके लिए ऐसा नहीं। यह सच है कि गप्पियों, दिखावों [वाह्य रूपों में विश्वास करने वालों],

लज्जाजनक "प्रतिष्ठा" के निर्लज्ज गुलामों की संगति से अधिक ज़हरीली वस्तु कोई भी नहीं है, किन्तु जहाँ प्रेम रूपी प्रभु डेरा डालता है, वहाँ कोई बेहूदा आवारह आस-पास नहीं फटक सकता। उन की सोहबत से घृणा करने की हमें ज़रूरत नहीं है! क़ानून क़ानून नहीं है और प्रकृति ठूँठों से अधिक कुछ भी नहीं है, यदि बेबुलाये घुसने वाले उस अवसर को छोड़ कर कि जब उन की सेवा की आवश्यकता है, तुम्हारा समय नष्ट करने की हिम्मत कर सकते हैं।

पंजाब का ग़नीमत नाम का सज्जन अपने ग्रन्थ "नैरंगे-इश्क़" में एक पाठशाला-शिक्षक, बेचारे उस्ताद अजीज़ की चर्चा करता है, जो अपने एक शहीद नाम के विद्यार्थी के प्रेम में दीवाना था। अपने विद्यार्थियों की, सुन्दर लिखने की मश्क़ों को सुधारते समय बेहोश शिक्षक अपने विद्यार्थी-गुरू की [जिस ने पाठशाला में हाल ही में पढ़ना शुरू किया था] धब्बेदार और मैली चिंथटियों [अस्पष्ट लेखों] को अपना आदर्श बना लेता था। शाबाश! क्या खूब!! दोष तभी दिखाई देते हैं जब प्रेम के अभाव से हमारे लोचन पाण्डुरोग* ग्रस्त होते हैं अर्थात् प्रेम के अभाव से जब हमारे नेत्रों में पीलिया पड़ जाता है। जब प्रेम रूपी प्रभु हमारे हृदय में डेरा डालता है, तब मानो एक दिन के दो दिन हो जाते हैं, मानो दूसरे सूर्य ने आकाश-मंडल की शोभा बढ़ा दी है।

सत्य शीलता।

शायद कुछ लोग ऐसे हों कि जो निर्मलता के नाम में प्रेम रूपी प्रभु के विरुद्ध खड्ग-हस्त हों अर्थात शस्त्र उठायें, मानो प्रेम के बिना एक क्षण भर भी पवित्रता जीती रह

* एक प्रकार का नेत्र रोग। इसी को पीलिया भी कहते हैं।

सकती है। कुछ प्रेम से मरते हैं, कुछ घृणा से मरते हैं। सच्चे किन्तु लोक-अप्रिय प्रेम की अपेक्षा दाम्भिक पवित्रता से युक्त घृणा को हृदय में स्थान देना कहीं अधिक घातक है। संसार में अपवित्रता के ग़ुलाम काफ़ी हैं, किन्तु अधिक भयंकर हैं शायद पवित्रता के दास, कि जो सदाचार की आड़ में अपनी दुर्बलता छिपाते हैं। अपने प्रति सच्चे, निर्मल बनो। अपने अनुभव के अनुसार जीवन विताओ। तुम्हारे अनुभव से अधिक प्रवीण शिक्षक कोई और नहीं है।

अपने अनुभव के विना कोई मनुष्य कदापि हृदय से शुद्ध नहीं हुआ। बाहरी अत्यन्त तुच्छ पवित्रता को—नहीं, नहीं, स्त्री जाति से घृणा करने को-अनुचित महत्त्व प्रदान करना, तुम्हें एक मात्र सच्ची पवित्रता—आत्मानुभव से दूर रखता है। लिंग-हीनता (Sexlessness) के और प्रत्यक्ष वीर्य-हीनता [practical impotency] के लिए अतिशय सत्कार करना, ब्रह्मपथ के सच्चे रास्ते से कुमार्ग गामी होकर अपने को स्पर्श रेखा के आस-पास भटकाना है।

यदि कृत्रिम सदाचार के फेरीवाले (artificial morality-hawkers) लोगों का पीछा छोड़ दें तो जिसे शारीरिक और मानसिक स्वच्छता कहा जाता है वह उसी प्रकार स्वभावतः और सरलतापूर्वक सीख लिया जा सकता है जिस प्रकार कोई आरोग्य की दृष्टि से, स्वास्थ्य का साधारण नियम समझ कर, नियम-पूर्वक हाथ धोना सीख लेता है। कामुकता (कामासक्ति वा भोगासक्ति) के विरुद्ध बहुत धूमधाम करना उस बातकी सृष्टि करना है जिस से ईश्वरीय-मानव-प्रकृति मुक्त है। अपने पौरुष को उच्चतर विषयों में लगाओ तो फिर तुम्हें ऐसी बात के सोचने का ही समय न रह जायगा जिस में कामुकता की गंध हो।

ऐसी पाठशालाएँ हैं जो पुरुषों को स्वाधीन चिन्ता की शिक्षा देने के बदले उन्हें बुद्धि हीन (intecllctual paupers) बनाने की प्रवृत्ति रखती हैं। उपदेशों के देने से नैतिक दरिद्रता (moral pauperism=सदाचार-हीनता) उत्पन्न हो जाती हैं। भोले भाले वा सीधे लड़कों और लड़कियों पर बलात् धार्मिक विश्वासों के लादने से आध्यात्मिक दरिद्रता (Spiritual pauperism) उत्पन्न हो जाती है। आध्यात्मिक दरिद्रता और धार्मिक असहिष्णुता (अथवा धर्मोन्मत्तता) अपने क्रम से उसी रोग की निष्क्रिय और सक्रिय हालतें हैं।

सब नदियां उसी सागर में गिरती हैं। समस्त प्रेम (प्रीतियों) की नदियां भी उसी एक प्रेम रूपी सागर में गिरती है। ईश्वर के वक्षस्थल पर सौन्दर्य उगता है। यह कमल ब्रह्मा की नाभि से उत्पन्न होता है। जो कोई सौन्दर्य से प्रेम करता है,उसे प्रेम को उस (ब्रह्मा) के द्वारा प्राप्त और अपने अधिकार में करना चाहिए कि जो जल पर शयन करता है। सचमुच सौन्दर्य आत्मा का निवास-स्थान है और सौन्दर्य आत्मा का भोजन है। सौन्दर्य-भाव से रहित आत्मा केवल राजद्रोह, छल-कपट और लूट-मार के योग्य है। किन्तु सुन्दरता है कहाँ? क्या नीले नेत्रों की ज्योति में, गुलाबी गालों में, कोकिल कंठ में, सुन्दर भूभागों में, ललित कलाओं में वह सुन्दरता रक्खी है? हाँ है, किन्तु उन्हीं में परिमित नहीं है। वह सौन्दर्योपासक रुचि वास्तव में शोचनीय है जिसे आनन्द की प्राप्ति के लिए वसन्तागमन की जाड़े भर प्रत्याशा करनी पड़ती है। करुणा-जनक है उस सांगीत-प्रेमी की दशा, जिस की कठिनता से तुष्ट होने वाली रुचि को, एक संतोष-जनक स्वर सुन पाने के पूर्व, सैकड़ों बार विफल मनोरथ और

आहत होना पड़ता है। वास्तव में वह व्यक्ति दुखी है कि जिस का सुख मनोहर भूप्रदेशों, बागों, अनुकूल संगति, मधुर शब्दों और अपने से बाहर की वस्तुओं के आश्रित है।

स्वाधीन पुरुष वह है जिसका आन्तरिक प्रकाश उसके आस-पास की सब वस्तुओं को प्रभा-मंडित (a halo of beauty) करता है और उस से केवल दैवी-प्रेम की किरणें फूटती हैं। चैतन्य-महा-प्रभु के सामने लुटेरों और शराबियों तक की गुप्त दैवी प्रकृति ऊपर की सतह तक खिंच आई।

श्वेत केश धारी सूर्य ने अपनी यात्राओं की राह में प्रकाश के सिवाय कभी भी कुछ नहीं देखा है।

योग दर्शन का क्या वह सूत्र गलत है जिस में स्वाधीन की प्रेम-शक्ति से वन-पशुओं तक की प्रेम-प्रकृति के पुनरुद्धार और प्रगट होने की चर्चा है? क्या सब धर्मों का स्वर्ग सदा स्वप्न रूप ही बना रहेगा, यदि वह यह जीता-जागता प्रेम नहीं है?।

पवित्रता क्या है?

परिच्छिन्नता और व्यक्तित्व के भिखमँगे और खुशामदी खयालों से अपने ईश्वरत्व को अकलंकित रखना (प्रेम है)। पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाहरी प्रभावों के अधीन न होना। सांसारिक मनोहरता और घृणा से परे रहना, रीझ और खीझ (favour and frown) से अविचलित बने रहना, किसी में भी भेद न देखने वाले आत्मानुभव द्वारा आकर्षणों और त्यागों (attractions and repulsions) से प्रभावित न होना ही पवित्रता है। केवल पवित्रात्मा पुरुष ही सब नामों और रूपों के दर्पण में अपना ही आन्तरिक "स्वर्ग का साम्राज्य"

देखता हुआ, अपने आइने को देखकर मुसकाती हुई सुन्दरी (वामा) के समान मनोहर दृश्यों और भूभागों को देखता हुआ प्रकृति का सुख-भोग कर सकता है। वास्तव में पवित्रात्मा ही वहाँ भी प्रेम रख सकता है जहाँ तुम प्रेम नहीं रखते। वल्कि पवित्रात्मा तो वहाँ प्रेम रखता ही नहीं किन्तु प्रेम में उठता अर्थात बढ़ता भी है, यह दुर्बलकारी अनुराग या मनचली भावुकता (Sentimentalism) नहीं किन्तु ईश्वर प्रेरक प्रेम। केवल सच्ची पवित्रता ही सच्चा प्रेम है, और केवल सच्चा प्रेम ही विशुद्ध पवित्रता है। कभी कभी सदाचार-दुर्बलता पवित्रता के नाम से पुकारी जाती है, जिस तरह आसक्ति (लगन) प्रेम का नाम धारण करती है।

जब तुम किसी वस्तु से अनुरक्त हो जाते हो तब तुम उस का भोग कदापि नहीं कर सकते अर्थात् तुम उस से आनन्द नहीं उठा सकते? एक निस्स्वार्थी प्रकृति का प्रेमी बाग का सुख भोग कर सकता है, यद्यपि बाग का मालिक कहलाने वाले के लिए उस की फूलती हुई सम्पत्ति चिन्ता और परेशानी के नित्य साधन से अधिक कुछ भी नहीं है। यह प्रेम या पवित्रता (विश्वव्यापी चेतना) ही हमारे लिए आवश्यक है। फिर तो दूसरी सब वस्तुएँ हमें आ मिलने को बाध्य हैं।

यह (पवित्रता) कैसे आती है ?

अपनी वर्तमान अवस्था को, वह चाहे कुछ भी हो, महिमान्वित करने से—अब (वर्तमान काल) का उत्कर्ष वा उत्थान करने से—आत्मज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) तुम में अनायास उदय होगा और आत्मानुभव के पीछे दौड़ने से नहीं, जैसे मानो वह कहीं दूर स्थित है। बच्चा अपने बचपन के

खेलों और आकांक्षाओं के प्रति सच्चा रह कर बचपन को पार कर प्रौढ़ता (युवावस्था) प्राप्त करता है, और बढ़े हुए बालकों के ढंगों की नक़ल करने से उसे नहीं पाता।

सुन्दरता क्या है ?

त्याग; अहंकारयुक्त जीवन का त्याग। सचमुच, वस्तुतः व्यक्तित्व के पिण्ड वाले जीवन के खोने में अमर जीवन स्थित है। सूर्य की किरणों के सब रंगों को जमा करने की स्वार्थ-परायण, पान कर लेने वाली, वा लीन करने वाली प्रवृत्ति पदार्थों को काला, कुरूप, और अन्धकारमय बना देती है। प्रकाश की किरणों के रँगों का उदार, निर्दोष बाधा रहित दान पदार्थों को जगमग और सफ़ेद रखता है। सब आकर्षणों और चुम्बकों को केन्द्र तथा समुदाय-बिन्दु-रूप सूर्य चारों ओर निरन्तर ताप दे रहा है और नित्य प्रकाश डाल रहा है।

एक बँधे हुए (संकुचित) अहं के भीतर बन्द न होने के कारण बच्चे मधुर (प्यारे लगते) हैं। जो कोई भी हमें आत्म-त्यागी, स्वार्थ-हीन भक्ति का संस्कार देता है वह हमें बलात् मोहित और वश करता है। हरेक व्यक्ति प्रेमी को प्यार करता है। ऐ दार्शनिक वाद-विवाद और तात्विक तर्क-वितर्क, तुम दूर हो। मैं जानता हूँ। सौन्दर्य प्रेम है, और प्रेम सौन्दर्य है। और दोनों त्याग हैं। इंग्लैंड के संन्यासी (ई० कार्पेंटर, E. Carpenter) के शब्दों में "जब तक तुम अपनी बाबत सोचना बिलकुल नहीं छोड़ देते, तब तक कोई सुख नहीं है, किन्तु अध-कचरे ढँग से तुम्हें ऐसा न करना चाहिए। परिच्छिन्न आत्मा का जब तक ज़रा सा भी ज़र्रा बाक़ी रह जायगा, वह सब कुछ सत्यानाश कर देगा। मैं यह नहीं

कहता कि यह कठिन नहीं है, किन्तु मैं जानता हूँ, कि दूसरा कोई उपाय नहीं है" ।

ऐ सजीव मनुष्य, अपने आप प्रेम-मय हो कर जीना सर्वथा उचित है । अनेक बुद्ध, ईसा, स्वामियों और गत काल की दूसरी मूर्तियों (व्यक्तियों) के अपूर्ण उदाहरणों से आच्छादित न हो । " History shrivels before the *will* of man, even if it be one man." "इतिहास, चाहे एक ही आदमी क्यों न हो, पर मनुष्य के संकल्प (इच्छा-शक्ति) के सामने संकुचित हो जाता है" । काल और कारण से न सहमो । प्रेम-मय होकर जियो, फिर सब क़ानून तुम में बस जाँयगे । आन्तरिक शान्ति से एक स्वर हो जाओ और काल (समय) तुम्हारे समय से मिला रहेगा । ओ, घड़ी की नन्ही सूइयां । कैसे लोहे के हाथों से वे संसार का शासन करती हैं । अमर मनुष्य, धूप घड़ी की परिधि संकीर्ण सत्ता में प्रत्यपकार-पूर्वक (with vengeance दास बना कर डाल दिया गया ! क़िस्मत की खूबी ! प्रकृति की घनता (solidarity) और एकता के क़ानून में संशय के कारण लोग सहम जाते हैं । अरे ! नास्तिकता है सन्देह करना, कि दूसरी देहों में कोई दूसरा रहता है । राम कभी घड़ी या घड़ा नहीं रखता, फिर भी वह कभी पिछड़ा नहीं । समय प्रेम के सहज स्वभावों के साथ क़दम रखने को लाचार है । एक पवन-चक्की ठीक ठीक लगा दी जाय तो चारों (ओर की) पवन अनायास उस से मिली-जुली रहेंगी । इसी तरह प्रकृति आप से आप तुम्हारे साथ काम करेगी । जब तुम प्रेम में केन्द्रित हो, तब सभी चमत्कार संभव हैं ।

देवता हमारे अनुग्रहाओं और विनयओं पर मन ही मन में हँसते हैं । निज आत्मा-रूप निकटतम पड़ोसी के प्रति

विश्वासघाती होकर अपने दूर के पड़ोसियों के प्रति सच्चे रहने की चेष्टा करने में कैसी उपहास्य प्रवंचनाएं हम करते हैं। एक दीन आवारह [भिखारी] एक झोंपड़े की मालकिन से रोटी मांगता है । वह, बेचारी नारी ! घर-हीन आवारह की स्वाधीनता से डाह करती है। आवारह [पर्यटक] के चले जाने पर वह अपने पति के सामने बहाना करती है कि एक पत्र आया है जिस में मेरी माता की मृत्यु की सूचना है। यह सोच कर कि माँ शायद हम लोगों के लिए कुछ सम्पति छोड़ गई हो, पति उसे मृत्यु-प्राप्त माता के घर ग्राम को जाने की अनुमति देता है। महिला टिकट ख़रीदती है और सब से निकट-वर्ती स्टेशन से लम्बी होती है। दीर्घ-काल की विकल कारिणी क़ैद के पिंजड़े से छूटे हुए पक्षी की तरह वह झपट कर वन में पहुँचती है और जंगल में हार्दिक हँसी हँस कर बहुत दिनों के थकाने वाले बोझ से पीछा छुटाती है। स्वच्छ-न्दता से वह विचरी, देहाती किसानों से अपना भोजन उस ने ख़रीदा और शाम होने पर सूखी घास के ढेर के नीचे पड़ रही। दूसरे दिन सवेरे फिर उस ने सुख-कर भ्रमण शुरू किया और देखिए, कौन सा निपट भयंकर शब्द वह सुनती है? कल्ह के अवारह-गर्द [बेहनू] के साथ उसी का पति घूम रहा है। खिन्नता के दुख-कर बोझे से वह उतना ही क्लेश पा रहा था जितना उस की पत्नी, और कुछ काल के लिए स्वतंत्रता तथा अवकाश का जीवन चाहता था। किन्तु श्रद्धाहीन जान पड़ने के डर से दोनों में से एक भी अपने हृदय की आकांक्षा दूसरे से प्रगट नहीं करता था। दूसरों को खुश करने की इसी प्रकार की हमारी तकलीफें हैं। अपने आप के प्रति सच्चे रहो, तब ठीक जिस तरह दिन के बाद रात, होती है उसी तरह तुम किसी दूसरे के प्रति भी

झूठे नहीं हो सकते। आदम और हव्वा [Adam and Eve] के मामले की भांति आज भी लज्जा को छिपाने का भाव अन्य सब पापों का जन्म है। दूसरों की मौजूदगी से विकल होना एक मात्र परमेश्वर की, जो परमात्मा है, महाघोर निन्दा है। अकेले अपने उच्चतर आत्मा के प्रति सच्चा होने से क्या कोई दुनिया के लिए प्रकाश हो सकता है ? उच्चतम व्यक्तिवाद उच्चतम परोपकारवाद है। वास्तव में इसे परोपकार कहना ही भूल है। दूसरों का हित करने का यचन ही हमारी आकर्षणशक्ति का केन्द्र हमारे आपे से वाहर निकाल देता है। निउटन [Newton] अपने गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसंधान में, जिस के द्वारा वह मानवजाति का एक महान् हितकारी सिद्ध हुआ, निस्संदेह दूसरों के बारे में कदापि नहीं सोच रहा था। हमें सब अन्यथा नामों [असंगत नामों] का अन्त कर देना चाहिए। डाक्टर जानसन [Dr. Johnson] कहते है "यदि कोई लड़का कहता है कि उसने अमुक खिड़की से देखा, पर देखा उस ने दूसरी से हो तो उसे चाबुक लगाओ"।

प्रेम या क़ानून ?

राम कोई युक्ति वा कल्पनाओं के नियम का आग्रह नहीं करता बल्कि घटनाओं का न्याय निवेदन करता है। जहां कहीं तुम बयान सुनो—क़ानून इस की आज्ञा देता है—तो याद रक्खो, वह मनुष्य पैव पर उतारू है। जो कोई प्रेम में रहता है, वह क़ानून से ऊपर क़ानून होकर रहता है। प्रेम में रहना अपने आप के प्रति सच्चा हाल रहना है। मेरा अपना आप सच्चा क़ानून है। मुझे क़ानून का आदेश करना उसे (क़ानून को) मुझ से अलग करना है। क्या बच्चे के

लिए, उसे साँस लेने, पढ़ने, या खेलने और जीने की आज्ञा देने वाले नियमों का निर्देश करना चाहिए? क्या उस का जीवन ही नियम नहीं है? स्वतंत्र पक्षी की भाँति लड़का गाता, हँसता, और अनायास बातचीत करता हुआ देखा जाता है। अनधिकारचर्चा शील दर्शक (officious visitors) आते हैं और उस से गाने, बातचीत करने, तथा हँसने की प्रार्थना करते हैं। बच्चा तुरन्त बन्द कर देता है। जो कौतुकी वचन उस के लिए बिलकुल स्वाभाविक थे. वे उस के लिए उसी क्षण अस्वाभाविक हो जाते हैं, जिस क्षण उसे उन वचनों की ग़ैरियत का ज्ञान करा दिया जाता है। जो कोई स्वतंत्र, अपने आत्मा के प्रति सच्चा और दैवी निश्चिन्तता (divine recklessness) का जीवन व्यतीत करता है, उस के प्रति संसार के सब क़ानून, उस से अनन्य होने के कारण, सच्चे रहते हैं। वह किसी वस्तु से भी घृणा नहीं करता। वह किसी से भी संकुचित नहीं होता। वह किसी से भी नहीं सिकुड़ता।

रोग क्या है? प्रेम के अभाव के कारण संकोच प्रतिच्छायाओं की फटफटाहट से थर्राना, और ख़तरों के दिवस-स्वप्नों (day dreams) पर रोना। वास्तव में डरने की कोई बात नहीं है। सब ओर, सम्पूर्ण भविष्य में, सम्पूर्ण दूरी में, केवल एक परम आत्मा का आस्तित्व है, और वह है मेरा अपना आप [आत्मा]। मुझे डर किस का? रात उतनी ही अच्छी है जितना दिन। तूफ़ान उतनाही ज़रूरी है जितना सूर्य-प्रकाश। प्रायः सारी रातें बिना पलकें लगे बीत जाती हैं, और तथापि राम दिन में सदा का सा प्रफुल्लित रहता है? क्यों कि नींद के लिए परेशानी थकावट [क्लान्ति] लाया करती है, और निद्रा का अभाव क्लान्ति का उतना अधिक कारण नहीं है। जब

प्रेम स्वरूप प्रभु हमें सोने नहीं देता, तब जागरणों में कैसा मज़ा आता है! जब शरीर-यंत्र को भोजन की हार्दिक चाह होती है तब भोजनों में आनन्द लिया जाता है, किन्तु प्रायः खाने की प्रवृत्ति न जान पड़ने से उपवास में भी वैसा ही आनन्द लिया जाता है। अश्रुओं की झपिण वर्षा आनन्द की बढ़िया ले आती है, क्यों कि उस प्रचंड वर्षा पर प्रेम की सवारी होती है। हँसी की धारें स्वच्छन्दता-पूर्वक बहती हैं, और उन में लुका हुआ हर्ष आँसुओं के हर्ष से न कम होता है और न अधिक। किस का मैं प्रतिरोध करूं किस से मैं बचूँ, जब सब मैं स्वयं ही हूँ? अरे, कैसी पूर्ण निश्चिन्तता है!

बुख़ार आने पर मैं विकल नहीं होता हूँ। मैं उस का स्वागत मित्रवत करता हूँ और ऐसे आध्यात्मिक तत्त्व उस समय फड़कते (चमकते) हैं कि जो अन्यथा नहीं प्रगट हो सकते थे। सब स्वास्थ्य है। जागरण एक प्रकार की तंदुरुस्ती है, निद्रा उस का दूसरा प्रकार है। कोमल शान्ति रमणीय वा रुचिर है, किन्तु उष्ण ज्वर के वेग का मज़ा ही निराला है। (True religion means faith in Good rather than faith in God) सच्चे धर्म का अर्थ ईश्वर में श्रद्धा की अपेक्षा सत् में श्रद्धा है। ऐसा तूफ़ान अब तक कभी नहीं आया जो स्वस्थ और निर्दोष कानों को पवन के देवता इओलिया (Aeolia) का संगीत न जान पड़ा हो।

मेघों की गरज की गड़गड़ाहट के साथ इस की घोषणा होने दो। जब तक बाहरी निर्बन्ध (आवश्यकता) का लेश और स्पष्ट आदेश 'तुझे यह चाहिए' और 'तुझे यह नहीं चाहिए' काम कर रहा है, तब तक आध्यात्मिक उन्नति अथवा सच्ची पवित्रता के लिये कोई स्थान नहीं हो

सकता। आज्ञा-वाच्य, मध्यम पुरुष, हम में परिमित व्यक्तित्व को जीवित रखता है, और जहाँ कहीं परिच्छिन्नता है, वहाँ न आनन्द है, न आकर्षण और निराकरण से बचाव है, न राग और द्वेष से मुक्ति है, और न प्रलोभन तथा चंचलता से छुटकारा है। जब तक दूसरे पिंडों से घिरे हुए देश में यह पिंड रहता है तब तक वह गुरुत्वाकर्षण (gravitation) को झाँसा क्यों कर दे सकता है. आकर्षण और निराकरण के नियमों के नेत्रों में धूल कैसे झोंक सकता है, प्रकृति को चकमा कैसे दे सकता है और बाहरी प्रभावों से क्यों कर बच सकता है। विभिन्न इन्द्रियों के कर्मों में स्पष्ट भेद होते हुए भी, मनुष्य अपने अकेले शरीर के सम्बन्ध में आत्मा की एकता के ज्ञान (चेतना) में रहता है— अर्थात् वही 'मैं' देखता है, सुनता है, चलता है, इत्यादि। इसी तरह मुक्त मनुष्य सारे संसार के सम्बन्ध में विश्व-आत्मा की चेतना (ज्ञान) में निवास करता है और भेद अपनी फ़िक्र आप वैसे ही कर लेते हैं जिस प्रकार एक शरीर में भोजन का परिपाक, बालों की बाढ़ इत्यादि अपनी फ़िक्र आप कर लेते हैं। अपनी अनन्तता की उपलब्धि के द्वारा ही, सम्पूर्ण भेद-भाव को जीतने ही से, सब से अपनी एकता का अनुभव करने ही पर, नक्षत्रों, भूमर्गों, नदियों, और सब को अपना आप ही अनुभव करने तथा प्रेम के द्वारा सब को अपनाने ही से प्रलोभनों का हम पर ज़ोर नहीं चलता।

प्रचंड सूर्य की जगमगाहट में जुगनूं कितना प्रकाश डाल सकती है? जब सब मेरे लिए सौन्दर्य है और मैं सौन्दर्य हूँ, तब किस के पीछे मैं दौड़ूँ? दुनिया की मिलकियतों की सम्पूर्ण श्रेणी में कौन सी वस्तु उस मनुष्य को आकर्षित कर सकने लायक़ है, कि जो समस्त आकर्षक

पदार्थों से पहिले ही अभेद है ?

उस मक्खीचूस चोर ने कौन सी दुष्टता नहीं की है या नहीं करेगा जो अपने को ईश्वर से भिन्न समझता हुआ प्रकाशों के प्रकाश को झूठ के गड्ढे के पीछे छिपाना चाहता है—अर्थात परम आत्मा के साथ मिथ्याचार और आत्मघाती होना है ?

'No physical action, good or evil,
No mental action, virtuous or ill,
No shame or fame, no praise or blame,
Could taint me e'er, no kind of game,
Nothing but the flood or glory!
To whom shall I give thanks,
To whom shall I turn and look up,
When Bliss absolute,
When Light immeasurable is manifest even in me?

कोई शारीरिक कर्म, बुरा या भला,
कोई मानसिक कर्म, नेक या बद (पुण्य या पाप),
कोई यश या अपयश, न कोई प्रशंसा अथवा निन्दा,
और न किसी प्रकार के खेल, कभी मुझे मलिन कर सके,
बाढ़ या गौरव के सिवाय कुछ नहीं !
किसे मैं धन्यवाद दूँ,
किधर मैं फिरूँ, और किस की आस लगाऊँ,
जब पूर्ण आनन्द,
जब अपार प्रकाश मुझे में ही प्रगट है !

श्रम और प्रेम।

दीन श्रमजीवी (मज़दूर) को आत्मा के लिए भोजन दो; उसे प्रेम प्रदान करो, और देह के लिए बिना कुछ भोजन माँगे भी वह तुम्हारा काम करेगा। तुम मज़दूर को प्यार करो, मज़दूर तुम्हारे काम से प्रेम करेगा। प्रेम-प्रेरित श्रम क्या श्रम कहा जा सकता है? नहीं, वह तो मनोरंजक क्रीड़ा है।

कला (art) क्या वस्तु है? जो कुछ हम स्पर्श करें उस में सौन्दर्य लाना। और पृथ्वी या स्वर्ग में वह कौन सी, वस्तु है जो सुन्दरता को प्रगट [और उद्‌घाटित] करती है? क्यों, प्रेम के सिवाय और वस्तु हो ही क्या सकती है?

इस प्रकार, प्रेम की वृत्ति हमारे श्रम पर चमक कर उद्योग को सुन्दरतामय बनाती है, और औद्योगिक कारीगरियों को उत्पन्न करती है। इन दिनों भारत में नाम लेने लायक़ कोई मौलिक नक़्शानवीसी, सुन्दर कारीगरी, किसी औद्योगिक कौशल की बढ़ती क्यों नहीं है? कारण यही है कि श्रम करने वालों से ज़रा भी प्रेम नहीं किया जाता। बेचारे श्रमजीवी-गण, हृदय में स्वागत पाने के बदले, अपने ही झोपड़ों से निकाल दिये जाते हैं।

जहां श्रम का तिरस्कार होता है वहां परिणाम निकलता है गतिहीनता, क्षीणता और मृत्यु; और कला कष्टसाध्य हो जाती है। जहां श्रम से प्रेम किया जाता है वहाँ जीवन और प्रकाश का वास होता है तथा श्रम कौशलपूर्ण हो जाता है। अरे, प्रेम-स्वरूप प्रभु! क्या यह दशा आगई है? प्रेम का यहां तक अनर्थ किया जाता है कि 'प्रेम' शब्द का उच्चारण मात्र प्रिय लोगों को 'दैवी ज्वाला' के स्थान में कामुकता

और शठता (मूर्खता) की सूचना देता है। कभी कभी लोग दैवी प्रेम, भक्ति, और उपासना के बारे में बड़ी बड़ी बातें करते हैं। किन्तु इस का व्यवहारिक रूप कुछ संस्कृत गीतों का ज़ोर ज़ोर से बकना और कुछ मंत्रों का रटना ही होता है। भाव की तो चर्चा ही व्यर्थ है, कठिनता से वे समझते हैं कि कह क्या रहे हैं। बिना बारूद की खाली गोलियाँ ! चैतन्य महाप्रभु के सच्चे प्रज्वलित हृदय की जाली नक़ल !

मन्दिरों से प्रायः देशी-भाषा के भजन सुनाई पड़ते हैं, गानेवाले यथाज्ञान अत्युत्तम रीति पर उन्हें गाते हैं, किन्तु मेरे प्यारे ! एक भी पवित्रकारी प्रेमाश्रु नहीं होता !

पुनीत हिन्दुस्थानियों ! तुम परमेश्वर को मूर्ख नहीं बना सकते और अपने आप को पापी और दास कह कर उस का प्रेम नहीं जीत सकते। जैसा तुम सोचते हो ठीक वैसे ही तुम हो जाने को बाध्य हो। कर्म का निष्ठुर क़ानून प्रति-शोधपूर्वक [प्रत्यपकार पूर्वक] काम करता है, और जब तुम उस प्रकार की प्रार्थना करते हो तब तुम्हें पापी और गुलाम बना देता है। यह भक्ति नहीं है।

मेरे अपने दीन अमीर ! तुम्हारे बनाये श्वेत, ऊँचे मन्दिर और पत्थर के विष्णु तुम्हारे हृदय के ज्वर को शान्त नहीं करेंगे। मैं जानता हूँ तुम पीड़ा भोग रहे हो। तुम्हारा अभिमान चाहे इसे न स्वीकार करे। देश के भूखे नारायणों और श्रम करने वाले विष्णुओं की उपासना करो। ग़रीब भारतीय विद्यार्थियों को उपयोगी कलाएँ और उद्योग धन्दे सीखने के लिए अमेरिका भेजो। भारत लौटने पर वे सैकड़ों, बल्कि सहस्रों मरभूखे लोगों को स्वावलम्बी बना कर बचावेंगे।

निज़ामी लेखक कृत "लैली और मजनूं" पढ़ कर एक

मनुष्य ने लैली का चित्र पुस्तक से काट लिया, उसे अपनी छाती से चिपटाये रहता था और सदा बड़े चाव से चूमा करता था। क्यों? वह उत्तर देता है, "कि मैं लैली पर आसक्त हो गया हूँ"। मूर्ख! बेचारे मजनूं की दिलजानी [Sweet heart] को ले लेना उचित नहीं है! मजनूं के प्रज्वलित प्रेम को तुम ले सकते हो, किन्तु जहां तक प्रेयसी का सम्बन्ध है, अपनी जीती-जागती प्रेयसी अलग बनाओ।

भारत के भक्तो! गोपियों और चैतन्य के प्यारे को ले लेने को तुम सब बहुत तैयार (राज़ी) हो, किन्तु गोपिकाओं और गौरांग का विशुद्ध प्रज्वलित मनोराग तुम में से कितनों में है? जब तुम दैवी-प्रेम से चांडाल में, चोर में, पापियों में, परदेशियों [अजनबियों] में और सब में उसे देखोगे, तथा केवल प्रस्तर प्रतिमाओं [Stone images] में ही उसे परिमित न करोगे, तब तुम उस मधुर ग्वाल [भगवान् कृष्ण] के प्यारे हो जाओगे।

विलाप, भिक्षा (याचना), अभावावस्था, भक्ति (प्रेम) नहीं है। मधुरता और दैवी-निश्चिन्तिता (divine recklessness) की किरणों से पूर्ण, वह तो साम्यता का अवर्णनीय ज्ञान है। जो कुछ हम देखते हैं उस सब में सर्व का देखना वह है। जहाँ कहीं तुम्हारी दृष्टि पड़े, उस में अपने ही-आप (आत्मा) को देखना भक्ति है। "सर्व सौन्दर्य है और मैं वह हूँ", यह अनुभव करना भक्ति है तत्त्वमसि या वह तुम हो।

Oh, thief! oh, Slanderer, Robber dear!!
Come, welcome, quick! Oh, don't you fear.
Myself is thine; thine is mine.
Yes, if you never mind, please take away these

Things you think are mine.
Yes, if you think it fit,
Kill this body at one blow, or slay it bit by bit.
Take off the body, and what you may!
Be off with name and fame Away!
Take off! away!
Yet, if you look, just turning round
'Tis I, alone, am safe and sound,
Good day! Oh, dear! Good day!

अरे, चोर! अरे, निन्दक, प्यारे डाकू!!
आओ, स्वागत, शीघ्र! अरे, तुम्हें कोई भय नहीं है।
मेरा अपना आप (आत्मा) तेरा है, तेरा मेरा है।
हाँ, यदि तुम (चाहो), तो कोई चिन्ता नहीं, कृपया ले जाओ इन
वस्तुओं को जिनको तुम मेरी समझते हो।
हाँ, यदि तुम यह योग्य समझते हो,
एक ही चोट से इस देह को मार डालो, या इसे टुकड़े २ करके काट डालो।
शरीर को ले जाओ, और जो तुम चाहो!
नाम और यश को ले भागो। चल दो!
ले जाओ! चले जाओ!
तथापि, यदि तुम देखो, ज़रा पलट कर,
मैं ही तो अकेला, सुरक्षित और स्वस्थ हूँ!
नमस्कार! अरे, प्यारे! नमस्कार!

मुसलमानों! तुम मुझे चाहे क़त्ल कर डालो। किन्तु मेरा हृदय तुम्हारे प्रेम से दहक रहा है। ईसाइयो, तुम चाहे

मुझे समझने में भूल करो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अन्त्यजो! महतरो यदि कोई तुम्हारी गंदी, रोग ग्रस्त (व्याधिग्रस्त) झोंपड़ियों में न घुसेगा तो राम को तुम वहाँ अपने साथ पाओगे।

बनावटी प्रेम, झूठी मनोवृत्तियां, और कृत्रिम भावुकता (Sentimentalism) ईश्वर का अपमान है। सच्ची ज्वाला की ज़रूरत है, चाहे वह निम्नतर वृत्ति (मनोविकार) के धुँए से क्यों न संयुक्त हो।

रूढ़ियां (conventionality), रीतियां (customs), अनुरूपता (conformity), लज्जा, नाम, और कीर्ति की दासता भूसी और कोयले के ढेर का काम देती हैं, जो दिखावों के भारी बोझ से दबे हुए युवक के आन्तरिक हृदय में जलती हुई सच्ची मनोभावना की चिनगारी को रोक लेता है। सत्य! तेरा स्वागत! केवल तू ही मेरा संबंधी, सुहृद, प्रियतम, ज़िमींदार, स्वामी, और मेरा स्वयं स्वरूप (आत्मा) है।

राजाओ! क़ानूनों और समाजो अपने हृदयों को आशीर्वाद दो, किन्तु राम को कुछ दबा लेने की तुम में कोई शक्ति नहीं है। अपनी धमकियों, रीझों, और खीझों (favours and frowns) को बचा लो। मेरा सम्राट, ज़ालिम सत्य, एक साथ लाखों महाराजों, निरंकुश सत्ताधारियों, स्वेच्छारियों से अधिक शक्ति शाली है।

कहा जाता है कि पनामा रेलवे (Panama Railway) की हरेक गांठ (बन्ध) का मूल्य एक मनुष्य का जीवन पड़ा। यह चाहे सत्य हो या नहीं, किन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि ज़ालिम सत्य का कूँच मानव खोपड़ियों से कुटी हुई सड़क पर होता रहा है। सुखी हैं वे शिर जो सत्य के मालिकाना क़दमों की रौंद से धन्य हुए।

जहाँ सत्यता नहीं है वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम-रूपी प्रभु ज़ालिम सत्य का सामन्त (प्रतिनिधि रूप से राज अधिकारी=vice-regent) है। उनका ओत-प्रोत सम्बन्ध भी हो सकता है। शायद दोनों एक ही हैं।

But God said,
'I will have a purer gift,
There is smoke in the flame'
Deep, deep are loving eyes,
Flowed with naphtha fiery sweet;
And the point is paradise
Where their glances meet.
Their reach shall yet be more profound
And a vision without bound;
The axis of those eyes sun-clear
Be the axis of the sphere.

(Emerson.)

किन्तु परमेश्वर ने कहा,
'मैं पवित्रतर भेंट लूंगा,
उस ज्वाला में धुँआ हैं'।
प्यारी आंखों में गहरा, गहरा,
ज्वालामय मधुर मट्टियातेल बहता है;
और स्वर्ग है वह विन्दु
जहाँ उन की नज़रें मिलती हैं।
उन की पहुँच और भी अधिक गम्भीर होगी
और दृश्य जिस की सीमा न हो;
उन सूर्य परिष्कार नयनों की धुरी
व्योम मंडल की धुरी हो। (इमर्सन)

पहाड़ों की तुम धाराओ, गर्जो ! ऐ समुद्र, तू गर्ज ! पीत नक्षत्रों के नीचे प्रलाप कर। ए मृत्यु की खाई ! काले तल के नीचे मुँह पसार (जम्हाई ले)। किन्तु ओह महान्-हृदय। मैं जानता हूँ, कि जंगलों, पहाड़ों और समुद्रों पर मृत्यु की काली दरार पर, प्रतिच्छाया की सी शीघ्रता से, तू ऐ मेरे प्रेम स्वरूप प्रभु ! सवारी करता है, और भूखी हवाएँ तथा लहरें तेरे शिकारी कुत्ते मात्र हैं। ऐ ज़ालिम सत्य ! तू नित्य का शिकारी है।

गैलीली [Galilee] में सांझ के समय, उस ने उन्हें [शिष्यों को] श्रम करते, थकते, खींचते और रस्सी से घसीटते, जल्दी जल्दी खेते देखा, क्योंकि वायु उनके प्रतिकूल थी। किन्तु 'स्वामी' के लिए न कोई श्रम था और न खेना। ऐसा यह मनुष्य यह जानता हुआ कि वह पानी पर चलेगा तूफ़ान के बीच में क्यों न सोवे,? अरे ! हर्ष ! मेरा प्रेमात्मा हवाओं और लहरों पर सवार होता है।

जापान में तीन सौ वर्ष के पुराने देवदार, और चीढ़ के वृक्ष (cedars and pines) इतने बौने रक्खे जाते हैं जैसे पियाज़ के पौधे। उन की बाहरी बाढ़ को रोक कर ? नहीं, किन्तु उन की भीतरी जड़ों को काट कर; वे भूमि में अपनी जड़ गहरी नहीं जमाने पाते, और स्वभावतः वे ऊपर नहीं बढ़ पाते। इसी तरह अस्वाभाविक शिक्षकों द्वारा नर और नारियों की स्वाभाविक बाढ़ मारी जाती है।

मूर्ख उपदेशको ! धार्मिक दैत्यो ! हाथ दूर करो ! नौजवान लोगों को आदेश देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। किसी व्यक्ति को यदि कोई अधिकार है तो वह सेवा करने का। प्रकृति, यदि मनमाने रास्ते चलने पावे तो कदापि भूल न करे। जिस क़ानून या ईश्वर ने लघुतम बिन्दु

(amœba) से दैवी मानवी-रूप में मनुष्य को विकसित किया उस पर पूरा भरोसा किया जा सकता है।

मानवी ईर्ष्या ने जिसे पाशविक मनोविकार कहा है उसे क़ाबू में रखने में अधिक नियत, अधिक स्वच्छ, अधिक समय के पाबन्द पशु क्यों हैं? स्पष्ट कारण यही है कि "तुम्हें यह चाहिए" और "तुम्हें यह नहीं चाहिए" से वे परेशान नहीं किये जाते। सेवा और प्रेम, न कि आदेश और बलात्कार (जबर), वृद्धि के लिये (उपयुक्त) वायुमंडल है।

फूलों को हम कैसे बढ़ा सकते हैं? उन्हें प्यार करने से। एक स्त्री ने सुन्दर फूल अत्यन्त प्रतिकूल जल-वायु में खिलाये। तुम ने यह कैसे प्रबन्ध किया? मैं उन से प्रीति करती थी, और उपाय आप से आप सूझ गये। प्रेम का मनोरम (रुचिर) उत्ताप एक मात्र पोषक है। वह शिल्पों को रुचिर बना देता है और हमारे काम में सुन्दरता ले आता है।

प्रेम को अनुराग से न मिलाओ। तुम्हारी स्त्री और बच्चे तुम्हारे स्नेहों को घेरने वाली टट्टियां होने के बदले, सारे संसार के लिए प्रेम के जगमगे केन्द्र होने चाहिए। जेन पाल रिचटर (Jean Paul Richter) कहता है, "मैं अपने परिवार को अपने आप से अधिक प्यार करता हूँ, अपने देश को अपने परिवार से अधिक और सारे संसार को स्वदेश से अधिक" ("I love my family more than myself, my country more than my family, and the whole world more than my country)."

लवलेस (Lovelace) ने युद्ध पर जाते लूकास्टर (Lucaster) से कैसे श्रेष्ठ वचन (कुछ बदले हुए) कहे हैं "प्यारे मैं तुझे अधिक नहीं प्यार कर सकी, मैंने राष्ट्र को

अधिक नहीं प्यार किया; (I could not love thee, dear! so much, Loved I not the nation more.)

सच्चा प्रेम, सूर्य की तरह, अपने आप (निजात्मा) का विस्तार करता है। मोह, पाले की तरह, आत्मा को सिकोड़ता और बांध देता है।

मूसा के पहले नियम (first law of Moses) का अर्थ है "Thou shalt have no other God but Love." "प्रेम के सिवाय तेरा कोई दूसरा ईश्वर न होना चाहिए"। यह डाही प्रेम-स्वरूप-प्रभु कामुकता और मोह की प्रतिमाओं को अपना शाही सिंहासन नहीं छीनने देगा।

एक नारी ने अपने इकलौते बच्चे की हानि (खोये जाने) की शिकायत की। राम ने पूछा, " क्या तुम एक हबशी बच्चे को गोद ले सकती और उस का अपने ही बच्चे का सा लाड़-प्यार कर सकती हो? क्या तुम उस के लिए तैयार हो?" वह कहती है, "नहीं"। "इसी से तुम्हारा बच्चा जाता रहा" अपनाने वाला प्रेम, न कि दूर करने वाला मोह स्वर्ग का उद्घाटन है।

लोग दूसरों की अकृतज्ञता की शिकायत करते हैं। जो थोड़ा सा हित उन से बन पड़ता है उस पर (Shylocks) शार्दूलाक बेहिसाब सूद लेने की चेष्टा करते हैं। शान्ति, शान्ति तुच्छ गुर्राने वालो! ईश्वर के केवल एक ही हाथ नहीं है। सब हाथ उस के हैं। सब नेत्र परमेश्वर के नेत्र हैं, और सब चित्त उस के हैं। किसी व्यक्ति से अपने व्यवहारों में क्या तुम ने कभी इस की परवाह की कि वह तुम्हें उसी हाथ से वस्तु लौटाता है या नहीं जिस से लेने के समय उस ने काम लिया था? वह चाहे दूसरा हाथ काम में लावे। इस से क्या होता है? तुम्हारा ग्राहक हाथ नहीं है, किन्तु हाथों को

धारण करने वाला।

अतः वास्तव में तुम्हारा व्यापार ईश्वर (क़ानून) से है और केवल रूपों से नहीं जो मित्र और शत्रु जान पड़ते हैं। परमेश्वर अपना देन चुकाने में कभी नहीं चूकता। कोई भी निस्स्वार्थ काम परमेश्वर को ऋणी बना लेता है। जिस हाथ से उसने लेने में काम लिया था उसी से चाहे वह न दे, किन्तु किसी दूसरे हाथ (मनुष्य) के द्वारा तुम सूद सहित भर पाओगे।

ऐ बेचैन अविश्वासी! क्यों तू हैरान और परेशान होता है? तेरे मधुर आत्मा (दैवी-क़ानून) के सिवाय और किसी का भी एकाधिपत्य विश्व-ब्रह्मांड पर नहीं है।

प्रतिमा पूजन क्या है?

मित्रों और शत्रुओं के रूपों को यहां तक व्यक्तित्व, पृथक्त्व (एकत्व) और वास्तविकता का भाव प्रदान करना कि निराकार (पर्दे-वाला) व्यक्ति (अविभाज्य), शुद्धात्मा या क़ानून भूल जाय।

वनों, भूभागों, नदियों, झीलों, और हरे-भरे पहाड़ों का दृश्य क्यों प्रोत्साहित, उत्थान, मोहित और अत्यानन्द की उत्पत्ति करता है? किस लिए? इसी कारण से कि परिमित व्यक्तित्व के बोध से वह हमें छुटा देता है, वह उन धारण की हुई दृष्टियों को हर लेता है जिन के बोझ से जनाकीर्ण राजपथों (Crowded streets) में हम दब जाते हैं। धन्य वृक्ष और प्यारा जल अपनी भात्रमयी कोमलता, बल्कि मधुरता में हम पर लघुता का कोई बोध बलात् नहीं लादते।

सुखी है वह,जो नरों और नारियों के झुंडों में जीवन की वही व्यक्तित्व रहित श्वास देखकर, जिस से गुलाब-वाटिका और सिंदूर-कुंज अनुप्राणित होते हैं, सम्पूर्ण विश्व को स्व-

णीय धारा में परिणत कर देता है।

प्रज्वलित विश्राम।

लाखों खनिज पदार्थ (minerals), पौधे, पशु नित्य प्रति उड़ाऊ (Spendthrift=त्याग शील) प्रकृति द्वारा नष्ट किये जाते जान पड़ते हैं। अच्छा, नष्ट होने दो। राम और प्रकृति प्रति घंटा कोटियों जीवन और खज़ाने मज़े में लुटा सकते हैं। वस्तु नष्ट होकर जायगी कहां? जहां कहीं भी वह जाती है वह मुझ में है। प्राचीन भारत की अतुल सम्पत्ति जब तक भारत में थी तब तक मेरी बांई जेब में थी: अब, जब वह इंग्लैंड को ढोई जा रही है मेरी दहनी जेब में है। मैं महासागर हूँ। ज्वार और भाटा दोनों मेरे हैं। विद्वेष (विरोध) और प्रतिकार [बदला] के भाव को पोषण करने से कोई हित न निकलेगा, किन्तु अपना कर्त्तव्य अर्थात् प्रेम करने से हित होगा। प्रेम सब पर विजय पाता है (Love conquers all), यह बेसमझी बूझी गिड़गिड़ाहट नहीं है। मिलकियत को ज़मीन में तोप कर रखने की ज़रूरत नहीं है। कपूर के छोटे टुकड़े को भी तुम इस प्रकार हुक्म देकर, नहीं रख सकते कि, "कपूर, कपूर, ठहरो यहां, तुम मेरे अधिकार में हो।" किन्तु प्रेम के द्वारा तुम सारे संसार को "मेरा अपना, मेरा बिलकुल अपना" समझ सकते हो। केवल प्रेम ही के द्वारा यथायोग्य स्वामित्व पूरा किया जा सकता है। और सब प्रकार का क़ब्ज़ा चोरी, डकैती, दैवी-क़ानूनों की हिंसा है, यद्यपि मनुष्य की स्वार्थपूर्ण प्रकृतियां चाहे उसे ही क़ानूनी [शास्त्रोक्त] कहें।

उस उपद्रवी (ज़ालिम) तैमूरलंग [Tamerlane] ने जिस ने अपनी ईरान की विजयका उत्सव नब्बे हज़ार

मनुष्य-सिरों के मीनार से मनाया था, हाफ़िज़ को उसके प्रसिद्ध भजन के नीचे लिखे चरण के कारण अपने सामने हाजिर किये जाने की आज्ञा दीः—

"अगर आं तुर्क शीराज़ी, इत्यादि" (अर्थः यदि शीराज़ का वह तुर्क मेरा दिल लूट ले उस मधुर अत्याचारी के मुख पर जो काला तिल है उसके लिये मैं समरक़ंद और बोखारा नगर दे डालूंगा)।

तैमूर ने कहा, "क्या तूही वह मनुष्य है, जिस ने अपनी प्रेयसी (mistress) के लिये मेरे दो बड़े से बड़े नगर देने की हिम्मत की थी ?" निर्भीक कवि ने उत्तर दिया, "जी, हां। और ऐसी ही उदारताओं से मैं ने सब कुछ खो दिया।"

कवि ने सत्य नहीं कहा। बात इस रूप में कही जानी चाहिये थी। प्रेम देव को सब कुछ भेंट कर देने से मुझे इतनी काफ़ी दौलत मिल गई है कि दोनों दुनिया बड़े मज़े में दे सकता हूं, और तूने ऐ ज़ालिम, अधिकार के ज्वर में पैर खो दिया है, शील स्वभाव खो दिया है, और फिर भी तेरे पास इतनी भी ज़मीन नहीं है कि तू दफ़न किया जा सके। "जो आदमी जितनी चीज़ें त्याग सकता है उतना ही वह धनी है।"

सब महात्माओं, कवियों कला और विज्ञान के आविष्कारकों (discoverers) और निर्माता जनों (inventors) और तत्वज्ञान के स्वप्न देखने वालों की स्फ़ूर्ति का मूल स्रोत प्रेम ही रहा है। हां, कुछ लोगों में औरों की अपेक्षा वह अधिक प्रकट रहा है। कृष्ण, चैतन्य, तुलसीदास, शेक्सपीयर, ईसा, रामकृष्ण में विरहाग्नि थी उतना ही स्फ़ूर्ति थी।

कामुकता से शून्य प्रेम आध्यात्मिक प्रकाश है। मेरे प्यारे! क़ायर महात्माओं (पैग़म्बरों) में अपनी स्फ़ूर्ति का सच्चा

भेद (प्रेम या तत्त्वमसि अर्थात् जहां देखता हूँ वहीं तूही तू है) लोगों पर प्रकट करने का काफ़ी साहस या ज्ञान नहीं था।

लोग, ग्रहों की भांति, आशातीत उत्साह से सूर्य की ओर बढ़ते हैं। प्रेम के इस प्रादुर्भाव में वे प्रेरणा-प्राप्त (ईश्वर-प्रेरित) महात्मा हो जाते हैं। परन्तु कुछ देरके बाद केन्द्रपरांमुख (Centrifugal force) या आध्यात्मिक आलस्य उन से चक्कर कटवाने लगता है, सूर्य से उन्हें दूर रखता है, उन्हें धर्मोन्मत्त बना देता है, विभिन्न सम्प्रदायों के मंडलों में वे बंध जाते हैं। कुछ तो मुख्य तत्त्व से बहुत दूर के मंडल में घूमते हैं। दूसरों के मंडल निकट और निकटतर होते हैं। राम इस धार्मिक सूर्य-मंडल का आनन्द लूटता है। किन्तु पतंगे का खेल खेलना और इस प्रकार से [उप] प्रकाश का निकटवर्ती होना [उप] कौन पसन्द करेगा कि [नि] निश्चित रूप से मेरा और तेरा, सम्पत्ति और अधिकार का सब भाव [पद] जाता रहे, तुच्छ स्वयं [या जीवन] प्रकाशों के प्रकाश में भस्म होजाय अर्थात् उपनिषद, [तत्त्वमसि] वह तू है।

ओ सभ्यता के आगन्तुको! हम तुम्हारे विज्ञानों और कलाओं को स्थान देते हैं, किन्तु दया करके उन्हें बहुत अधिक न बढ़ाओ। प्रभु प्रेम वह सूर्य है जिस के इर्दगिर्द संसार के विज्ञानों को ग्रहों और उपग्रहों की तरह चक्कर काटना चाहिये।

भूगर्भ विद्या मनुष्य से बहुत दूर हटे हुए खनिज पदार्थों और पत्थरों का ऊहापोह (सविस्तर वर्णन) करती है। बनस्पति विद्या का सम्बन्ध जिस विषय से है वह खनिजों से कुछ ऊंचा है। ज्योतिष शास्त्र बहुत दूर के नक्षत्रों का वर्णन करता है। देह धर्म्म विद्या (physiology) मनुष्य की हड्डियों,

वाहरी ढांचों से ताल्लुक़ रखती है। मनोविज्ञान केवल मन की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन करता है। किन्तु प्रेम मनुष्य और प्रकृति के वास्तविकतम तत्व से सम्बन्ध रखता है। वह विज्ञान और कला दोनों है। ये वैज्ञानिक अविष्कार तो महान् सूर्य, प्रेम की अग्नि, या एकता की भावना की केवल चमचमाहट और चिनगारियां हैं।

जब वालक फ्रांकलिन (Franklin) क़नकइया उड़ा रहा था, तब उस का पिता वेंजामिन (Benjamin) चुम्बकी (magnetic) सुई डोर के पार करके देख रहा था। देखो उसे, कैसा अचल, वेदम उस का शरीर है! पृथिवी से, जिस पर उस का शरीर टिका हुआ है, क्या उस की हस्ती किसी तरह भी अलग जान पड़ती है? अपने आस-पास की सब वस्तुओं से क्या वह विलकुल एक नहीं होगया है? मानों वह एक शिला है। उस का हृदय प्रकृति के हांफते हुए सीने के साथ धड़क रहा है। और इस तरह प्रकृति के रहस्य उस के रहस्य बन जाते हैं। आकाशी विजली पृथिवी पर की विद्युत की चिनगारी से अभेद अपने को सिद्ध करती है। वाहरी प्रकाश आन्तरिक प्रकाश से अपनी एकता प्रकट करता है।

प्रेम या एकता की भावना जब दो मनुष्यों के वीच में काम करती है। विभेद की माया (भ्रम) को छिन्न भिन्न कर देती है। एक पक्ष की भावनाएं दूसरे पक्ष की भावनाएं हो जाती हैं। एक सीने में जो कुछ वीतता है वही दूसरे में प्रकट होता है, और दिव्यदृष्टि (Clairvoyance) सिद्ध तथ्य हो जाती है, और स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

"निस्सन्देह मैं ही इस सब में व्याप्त हूं जिस तरह एक ही डोरे में माला के अनेक दाने पिरोये हुए हैं।"

Whatever thou lovest, man,
  Thou too become that must;
God, if thou lovest God,
  Dust, if thou lovest dust.

मनुष्य, जो कुछ तू प्यार करता है,
वही तू अवश्य हो जाता है;
ईश्वर (बन जाता है), यदि तू ईश्वर से प्रेम करता है,
खाक, यदि तू खाक को प्यार करता है।

ओह! हमारा अपने ही हृदय का भक्षण, कैसा स्वादिष्ट भोजन है, कैसा सुन्दर भोजन है, कैसा सुखकर भोजन है! इतनी स्वादिष्ट कोई चीज़ नहीं। राम के लिये तो दूध कभी कभी इस का अच्छा साथ दे देता है।

The moon is up ; they see the moon.
  I drink Thine eyebrow's light.
Big fair they hold, full crowded soon.
  I watch and watch Thee, source of light.
Nay, call no surgeons, doctors, none,
  For me my pain is all delight.
Adieu, ye citizens, cities, good bye !
  Oh welcome, dizzy, ethereal heights !
O fashion and custom, virtue and vice,
  O laws, convention, peace and fight,
O friends and foes, relations, ties,
  Possession, passion, wrong and right,
Good bye, O Time and Space, good bye ;
  Good bye, O World, and Day and Night.

My love is flowers, music, light.
My love is day, my love is night.
Dissolved in me all dark-and bright.
Oh, what a peace and joy !
Oh, leave me alone, my love and I,
Good bye, good bye, good bye.

चन्द्रोदय हुआ है; वे चन्द्रमा देखते हैं !
पर (ऐ प्रेम स्वरूप प्रभु !) मैं तुम्हारी भृकुटि की रौशनी पीता हूं।
बड़ा मेला उन्हों ने लगाया है, जल्दी पूरी भीड़ होगई।
पर ऐ प्रकाशों के मूल मैं तुझे निरखता और देखता हूं।
नहीं; किसी जर्राह, वैद्य, किसी को न बुलाओ,
मेरे लिये मेरा दर्द पूर्णतः हर्ष है।
ऐ नागरिको, नमस्कार ! नगरो; प्रणाम !
ओ चकरानेवाली, आकाशी ऊंचाइयो ! स्वागत,
ऐ फ़ैशन और रीति, नेकी और बदी,
ऐ क़ानून, नियम, शान्ति और संग्राम,
ऐ मित्रो और शत्रुओ, सम्बन्धियो और बन्धनों,
अधिकार, इन्द्रिय-राग, ग़लत और सही,
अन्तिम नमस्कार, ऐ काल और देश, नमस्कार ;
नमस्कार, ऐ दुनिया, और दिन तथा रात।
मेरा प्रेम है फूल, संगीत, प्रकाश।
मेरा प्रेम है दिवस, मेरा प्रेम है रात।
सब अंधियारा और उजियाला मुझ में लीन है।
अरे, कैसी शान्ति और हर्ष !
अरे, मुझे अकेला छोड़ दो, मेरे प्रेम को और मुझ को;
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार।

When blushing bride by Love doth stand
Says "yes" with eyes and gives her hand,
'Adieu ! father, mother;
Adieu ! sister, brother;
The hairs do stand at end,
The throat is choked, Oh friend.

जब सकुचती हुई दुलहन प्रियतम के पास खड़ी होती है
नेत्रों से 'हां' कहती है, और अपना हाथ देती है।
विदा ! पिता, माता,
विदा ! बहन, भाई,
तब ए मित्र रोमाञ्च हो आता है,
गला रुक जाता है।

Welcome you are to world so bright,
Welcome to us is God's fair sight:
But remember well,
This is the last we tell ;
The hairs do stand at end,
The throat is choked, Oh friend.

ऐसी चमकीली दुनिया में तुम्हारा स्वागत है,
ईश्वर के सुन्दर दर्शन का हमारे लिये स्वागत है !
किन्तु खूब याद रक्खो
यह हमारा अन्तिम कहना है,
रोमाञ्च हो आता है,
गला रुका जाता है, ऐ मित्र !

विभिन्न पदार्थ—बड़ा, छोटा, भला, बुरा, कुरूप और मनोहर—सब के सब सजीवन प्रेमी के लिए रेखाचित्र हैं,

सभी वही प्रेम सूचित करते हैं, सुन्दर अक्षर हैं, (और इन) सभी का अर्थ है मेरा अपना आप (आत्मा); उत्कृष्ट चित्र हैं, जो सभी प्रिय प्रभु को प्रतिपादन करते हैं; और विभिन्न सुन्दर वस्त्र हैं जो सभी उसी प्यारे, आत्मा, के सेवक हैं।

अरे ! सुन्दरता का कैसा महासागर है ? प्रेम का कैसा महासागर है ? प्रेमी के लिये प्रेमपात्र की काली काकुलें उतनी ही मन-मोहक हैं जितना कि गोरा मुखड़ा। इसी तरह राम को रात भी दिन के समान प्रिय है; मृत्यु उतनी ही मधुर है जितना जीवन; ज्वर भी तन्दुरुस्ती के समान अभिनन्दनीय है, शत्रु उतने ही प्यारे हैं जितने सुहृद (मित्र)।

वह कितना धन्य है जिस का माल चोरी चला गया ? वह तो तीन बार धन्य है जिस की स्त्री भाग गई, बशर्तेकि इस तरह से सर्व-प्रेमरूप प्रभु से प्रत्यक्ष संसर्ग उस का हो जाय। मुस्लिम परम्परा के अनुसार, इब्राहीम (Abraham) ने एक बार समुद्रयात्रा की इच्छा की (हज़रत) खिज्र, या नेपट्यून, (Neptune) ने नाविक बनाये जाने की प्रार्थना की। पहले इब्राहीम मूर्खता से राज़ी हो गया। किन्तु फिर विचारने पर उस ने इन शब्दों में खिज्र से माफ़ी माँगी, "मेरे अत्यन्त दयालु भाई, मुझे कृपया क्षमा करो, मैं यह पसन्द करूँगा कि मेरी नौका का कोई मल्लाह न हो, स्वयं प्रेम का हाथ उसे पार लगावे। तुम, समुद्रों के स्वामी, यदि चप्पा (डांड़) लोगे तो यात्रा बिलकुल महफ़ूज़ हो जायगी। किन्तु अफ़सोस (यद्यपि) बड़ी ही निश्चिन्तता हो जायगी (पर) मैं तुम्हारे सहारे हो कर सीधे ईश्वर के भरोसे से रहित हो जाऊँगा। कृपा कर के मुझे और ईश्वर को अलग न करो। अपने भाई खिज्र के वक्षस्थल की शरण लेने की

अपेक्षा मुझे सीधे ईश्वर की गोद पर विश्राम करने में अधिक सुख है।"

निराश और त्यक्त प्रेमी कहता है, "ऐ बिजली, चमक! ऐ मेघ, गरज! ऐ तूफ़ान, ग़ुर्रा, ऐ पवन, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ। ओह धन्य मेघ गर्जन! नाज़ुक प्यारे को तू डराकर मुझ से एक क्षण लपटादे। ज़िन्दगी की कड़ुई घटनाएँ कितनी अधिक मधुर हैं! जब कि उस के अँगूरों से परमेश्वर रूपी प्रेम की स्वादिष्ट यंत्रणा की मीठी शराब हम निकाल सकें।

Take my life, and let it be
  Consecrated, Lord, to Thee,
Take my heart and let it be
  Full saturated, Love, with Thee.
Take my eyes, and let them be
  Intoxicated, God, with Thee
Take my hands, and let them be
  Engaged in sweating Truth for Thee.

मेरा जीवन ले लो, और हे प्रभो!
इसे अपनी भेंट होने दो।
मेरा हृदय ले लो, और हे प्रेम-प्रभो!
अपने प्रेम से परिपूर्ण होने दो।
मेरे नयन ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
अपने दर्शन से उन्मत्त, होने दो।
मेरे हाथ ले लो, और उन्हें, हे प्रभो!
अपने लिये, सत्य का पसीना निकालने में लगने दो।
(अर्थात् सत्य फैलाने के परिश्रम में लगने दो)

प्रिय धन्य पाठक ! क्या कभी प्रेम में, स्वार्थ शून्य प्रेम में डूब जाने का, बल्कि प्रेम में उत्थान का, जब तुम ने सर्वस्व प्रेम के हवाले कर दिया हो, सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ है ? तब तुम नीचे दिये हुए सरीखे भावों की क़दर कर सकोगे।

"Soft skin of Taif for thy sandals take,
And of our heart-string fitting latchets make,
And tread on lips which yearn to touch those feet."
"O my blessed Lord, accept me as the most humble slave of feet."

ऐ मेरे प्रभु ! तैफ़ के कोमल चर्म की आप अपने लिये पादिका बनाओ, और हमारी हृदय तंत्रियों की उपयुक्त डोरियाँ बनओ, और उन होंटों पर चलो जो उन (आप के) चरणों को छूना चाहते हैं। ऐ मेरे महाप्रभु, चरणों का अत्यन्त विनीत सेवक मुझे स्वीकार करो "।

वह कौन सा स्थान है जिसे प्रेम धन्य और रूपवान नहीं बना सक्ता ?

प्रभु जी ! मैं चरणों की दासी।

जहां प्रेम है, वहां न कोई बड़ा है और न छोटा, न कोई नीचा और न ऊंचा। जब प्रेम की भावना हमारी प्रेरक होती है तब कड़े से कड़ा काम स्वर्ग-सुख-दायक होजाता है। स्वार्थ-परता ऊँचे से ऊँचे पद को अत्यन्त कष्टप्रद (wearisome) और कठिन बना देगी। जीवन में तुम्हारी कोई भी स्थिति हो, प्रेम उसे माधुरी प्रदान करता है। हमारी तुच्छ स्वामित्व की, वस्तुओं पर क़ब्ज़ा पाने की वृत्ति से ही सारे क्लेशों, संकटों, पीड़ाओं और चिन्ता का जन्म होता है। घोर नरक की व्यथा कहां

रह जाती है, जब मैं उसे प्यार करता हूँ? सब हमारे क्लेश और दिक्कतें मानों प्रेम की छेड़खानियां हैं कि हम जाग कर उस प्यारे को गले लगावें। ये झटके, हिलकोरे और थपकियां मधुर-प्रेम-रूप प्रभु के सिवाय और किसी के नहीं आते हैं। परमेश्वर, प्यारा हरि, अपना प्रेम ढालता हुआ तुम्हें जगाता है।

Then rise, awake.
Dost hear the palm trees sighing ?
It is my heart that sighs
To hear thy lips replying
And gaze into thine eyes,
Then wake, awake !
Sweet Love ! see here, I bend to thee, awake, awake !
My loved one ! unfold thy heart to me. Wake, awake !

तब उठो, जागो।
ताड़ के वृक्षों की आहें सुनते हो?
यह मेरा दिल है, जो आहें भरता है (किस लिये?)
तुम्हारे अधरों के उत्तर सुनने को
और तुम्हारे नेत्रों में ताकने को,
तब जागो जागो।

मधुर प्रेम! इधर देखो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं जागो, जागो। मेरे प्रिय! अपना हृदय मेरे आगे खोल दो। जागो, जागो!

Dost see the Himalayan snows
That grow and never tire ?

They cannot cool my burning love
Or quench my soul's desire.
Then wake, awake!

हिमालय की बरफ़ को देखते हो।
जो बढ़ती है परन्तु थकती (अर्थात् घटती) कभी नहीं?
वह मेरा प्रज्वलित प्रेम शीतल नहीं कर सकती।
और न मेरी आत्मा चित्तकी आंकांक्षा को बुझा सकती है।
तब जागो जागो!

Dost hear the Ganges river,
Its sacred waters roll?
But deeper flows for ever,
The passion of my soul,
Then wake! awake!

गंगा नदी के कलरव को सुनते हो,
उस का पुण्य-सलिल (पवित्र गंगा जल) बहता है?
किन्तु जो धारा सदा अधिकतर गंभीर बहती है,
(वह) मेरे चित्त की उत्कट उत्कंठा है।
तब जागो जागो!

LUDICROUS FRIGHT.

They say it was a penniless lad
And nothing, nothing to lose he had.
He heard that thieves were at him still,
They must pursue, go where he will,
Thus haunted, worried, he for escape
Ran uphill, down ditch, into the cape:
He hurried and flurried in fear and fright,

Wore out his body, and mind in flight,
Yet nothing, nothing to lose he had,
They say it was a penniless lad !
O worldly man ! such is thy plight,
Thy arrant ignorance and fright,
O scared fellow, just know thy-self.
Away with dread of thieves and theft,
Up, up awake, see what you are,
There is nothing to lose or fear for,
No harm to thee can e'er accrue
Thy thought alone doth thee pursue.

रंगीला (हँसाने वाला) भय .

वे कहते हैं कि वह एक महा दरिद्र छोकड़ा
और कुछ नहीं, कुछ नहीं, गंवाने को उस के पास था।
उस ने सुना कि चोर अब भी उस के पीछे लगे हुए हैं,
वे तो पीछा करेंहीगे, वह कहीं भी जाय।
बचाव के लिये, इस तरह वह व्याकुल और व्यग्र,
पहाड़ पर चढ़ा, खाई में उतरा, गुफा में घुसा।
भय और भीति में उस ने जल्दी की और हड़बड़ाया,
भागते भागते उस ने अपनी देह और चित्त को धक्का दिया,
तथापि कुछ नहीं, कुछ नहीं गंवाने को उस के पास था,
वे कहते हैं कि वह बेछदाम का छोकड़ा था!
ऐ संसारी मनुष्य! इसी प्रकार ही तेरी दुर्दशा,
तेरा अति दुष्ट (निकृष्ट) अज्ञान और भय है,
ऐ सहमे हुए मनुष्य, ज़रा अपने को पहचान।
चोरों और चोरी का डर दूर कर,

उठो, उठो जागो, देखो तुम क्या हो,
न कुछ गंवाने को है और न किसी से डरने को है,
तुझे कभी कोई हानि नहीं पहुँच सकती,
केवल तेरा ख़्याल तेरे पीछे लगा है।

असली (आचरण में लाने योग्य) प्रज्ञा (बुद्धि मानी)

यदि कोई व्यक्ति एक फरलांग भी बिना सहानुभूति के विचरता है, तो वह अपना कफ़न पहने हुए अपनी ही अन्त्येष्टि के लिये विचरता है।

बुद्धिमानी और विद्वत्ता (wisdom and learning) अभिन्न नहीं हैं। सदा उन का बोलचाल भी नहीं रहता। विद्वता पीछे की ओर (अतीत) को देखती है। बुद्धिमानी आगे की ओर (भविष्य) को देखती है।

आगे का कर्त्तव्य जानना बुद्धिमानी की परिभाषा की गई है। उस कर्तव्य का करना नेकी या गुण है।

बिना नेकी के बुद्धिमानी शरीर की थकावट है। जिस तरह इच्छा कार्य का रूप और विज्ञान कला का, ज्ञान शक्ति का, उसी तरह बुद्धिमानी गुण का रूप धारण करती है। और जहां बुद्धिमानी (विचार) कार्य में नहीं परिणित होती वहां मानसिक मन्दाग्नि (बदहज़मी, अजीर्ण) या नैतिक क़ब्ज़ हो जाता है। पैरों (आचरण वा अमल) से रहित किन्तु केवल विचारों के मनुष्य बुद्धि के कनखजूरों से बढ़ कर नहीं हैं।

एक अमेरिकन विनोदी (humorous) लेखक कहता है:-

I've thought and thought on men and things,
As my uncle used to say,

'If the folks don't work as they pray,
'Why, there ain't no use to pray,
If you want some-thing and just dead set,
A pleading for it with both eyes wet,
And tears won't bring it; why, you try sweat,
As my uncle used to say

मैंने मनुष्यों और वस्तुओं पर खूब विचार किया है,
जैसा कि मेरे चचा कहा करते थे,
"यदि लोग काम नहीं करते जैसा कि वे प्रार्थना करते हैं,
तो फिर प्रार्थना से लाभ ही क्या।"
यदि तुम कोई वस्तु चाहते हो और बड़ी उत्सुकता से,
दोनों आँखें तर कर के उस के लिये आग्रह करते हो,
और नेत्रों के आंसुओं से प्राप्त नहीं होती। तो फिर
(उस को प्राप्त करने का) पसीना बहाकर (परिश्रम
द्वारा) प्रयत्न करो।
जैसा कि मेरे चचा कहा करते थे।

बाहरी अवस्थाओं के प्रति ठीक और महफ़ूज़ जवाब की शक्ति चित्तकी स्वस्थता का परम लक्षण है। आवश्यकता के अनुसार कार्य करने की अयोग्यता पागलपन का एक स्वभाव है। "बदलो या मिटो" प्रकृति का विकट संकेत शब्द (watchword) है। बढ़ते हुए समय के साथ चलो तो तुम जीवन संग्राम में बच सकते हो। (भारत, सावधान!)

सम्पूर्ण व्यावहारिक (आचरणीय) बुद्धिमानी का तत्त्व भगवान् कृष्ण की सरल और उद्धारण शिक्षा में संक्षेप से भरा हुआ है।

कर्मण्येवाधि कारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥ (गीता २)

"तेरा प्रयोजन केवल कर्म से है, उस से होने वाले लाभ या फल से नहीं। कर्म के फल में तू न फंस, और न तू निष्क्रियता का दास बन।"

"And live in action! Labour! make thine acts
Thy piety, casting all self aside,
Contemning gain and merit; equable
In good or evil; equability
Is yoga, is piety;"

और कर्म में, श्रम में, जीवन व्यतीत कर! अपने कर्मों को ही अपनी पवित्रता बना, सम्पूर्ण परिच्छिन्न आत्मा (स्वार्थ) को अलग रखदे, लाभ और कीर्ति को तुच्छ समझ; समभाव बुराई और भलाई में प्राप्त कर; समभाव ही योग है, ईश्वरनिष्ठा (पुण्यता) है।

संग्राम में लगा रह; यह तेरा कर्तव्य है। सच्चा वीर संग्राम (कर्म) को जितना प्यार करता है उतना कभी किसी प्रेमी ने अपने प्रेमपात्र की बलाएं न ली होंगी। रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होकर तुम सत्य या स्वर्ग की महिमा बढ़ाते हो [अर्थात् योग्यतम को बचने (जीते रहने) का अवसर देकर विकाश और विश्व-उन्नति को तुम अग्रसर करते हो।] और विजय प्राप्त हुई तो भी तुम अपने द्वारा सत्य, वास्तविक शक्ति को प्रकाशित होने देते हो। वास्तव में तुम ही सत्य हो जो विजयी होता है, और तुम यह या वह शरीर नहीं हो जो युद्ध में खप जाता है। तुम सदा विजयी हो। सत्य के आत्मा होने के कारण जीवन का तेज होकर तुम चमको।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चय ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व.नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
(गीता अध्याय २)

"Either — being killed —
Thou wilt win heaven's safety, or—alive
And victor—thou wilt reign earthly king.
Therefore, arise thou, Son of Truth! brace
Thine arm for conflict, never thy heart to meet—
As things alike to these —pleasure or pain,
Profit or ruin, victory or defeat.
So minded, gird thee to the fight, for so
Thou shalt not sin."

"यदि मारे जाओगे तो स्वर्ग प्राप्त करोगे, यदि विजयी होकर जिओगे तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे, अतएव, ऐ सत्य के पुत्र ! तू उठ, युद्ध के लिये अपना हथियार सम्हाल, हृदय की दुर्बलता छोड़, सुख और दुःख, लाभ और हानि, विजय और पराजय को समान समझ; ऐसा समझते हुए युद्ध के लिये कटिबद्ध हो ; क्योंकि इस तरह तू पाप से बचेगा" ।

सफलता की सच्ची माप (कसौटी) आध्यात्मिक उन्नति है और बाहरी लाभ या हानि नहीं, पराजय और जय समान महिमामय हैं ।

"शाह स्वारे खुश व मैदान गोया बिज़न" ।
ऐ सुखी शूरवीर, तुम इत्तफ़ाक़ से क्रीड़ाभूमि में हो,
(संसार रूपी गेंद को हिट मारो, हिट मारो) ।

किसी मनुष्य में चरित्रबल उसी प्रमाण से होता है, जितनी मुसीबतें कि वह झेल चुका होता है।

" Then welcome each rebuff
    That turns Earth's smoothness rough.
Each sting that bids not sit, nor stand, but go!
    Be our joys three parts pain.
Strive and hold cheap the strain;
    Learn, nor account the pang; dare,
        never grudge the throe.
For thence a paradox
    Which comforts, while it mocks,
Shall life succeed in that it seems to fail "

"तब ऐसे हरेक पराभव (पराजय) का स्वागत करो जो पृथिवी की स्निग्धता (मृदुता) को खुरखुरा कर देता है। हर डंक (दंश) जो आदेश देता हैं न बैठने का, न खड़े रहने का, परंतु आगे जाने का! (उसे से) हमें पीड़ा से तिगुना सुख हो। प्रयत्न करो और उद्यम को सुख समझो; सीखो, पीड़ाओं को न गिनो, साहस करो, यातना (वेदना) से कभी मुख न मोड़ो। क्योंकि यह एक विरोधाभास है; और यह तब सुखकारी होता है जब (दुःख से) वह उपहास करता है। और जो (इस के कारण) असफलता प्रतीत होता है, वही वास्तव में जीवन की सफलता है।

प्रयोगहीन उपाय।

परन्तु सब हाव भाव और ऊपरी बातों को हटाने, और आन्तरिक अनुभव के तथ्यों की ओर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि समस्त अक्लमन्दी की सलाहें, आचरण के

नियम, प्रामाणिक प्रतिवन्ध, ब्योरेवार आदेश " तू यह न कर और तू यह कर," (ये सब उपाय) ऐसे मनुष्य में, जो जाने वा अनजाने अपने ईश्वरत्व दृढ़ता पूर्वक स्थित नहीं है, जीवन संचार करने के लिए व्यर्थ के प्रयत्न हैं। और ये उस वाहरी विद्युत-संचार के समान हैं, जो अधिक से अधिक मृत शरीर के इस अंग अथवा उस अंग को हिला देते हैं, परन्तु संचार करने से अधिक और कुछ करने की शक्ति नहीं रखते।

"That which is forced is never forcible"
जत्रिया जो कुछ होता है। वह कभी शक्तिशाली नहीं होता।

जब तक प्रेम घर को न वनाये, तब तक जो लोग इस को वनाते हैं वह व्यर्थ का परिश्रम करते हैं। यह सत्य है 'कि अलौकिक वुद्धि के चमत्कार सदा परिश्रम के ही चमत्कार होते हैं, परन्तु जो (श्रम) और लोगों की दृष्टि में 'दुःख दायक परिश्रम' जान पड़ता है, वह स्वयं मेधावी की दृष्टि में सर्वोत्तम आनन्द-दायक क्रीड़ा (खेल) प्रतीत होता है।

वह निर्जीव, नीरस कार्य जो (व्यक्तिगत अहंकार द्वारा) श्रम पूर्वक करना पड़ता है, उसे मैं छोड़ दूं तो अच्छा। यदि आत्मा के वहाव की तरह कार्य तुम्हारे द्वारा अपने आप नहीं होता, तो तुम्हरा सारा कठिन परिश्रम इस के कर लेने का तुच्छ वहाना है। इस प्रकार के फीके आनन्द रहित काम को जो इस प्रशंसा के आकांक्षी मायामय अहं (तुच्छ अहंकार, परिच्छिन्नात्मा) द्वारा किसी तरह किया जाता है, उसे शंकर ने दासता का भाई वताया है।

एक लड़का आनन्द से वाज़ारों में सिटी वजा रहा था। एकपुलिसमैन ने उसे टोका। लड़का उत्तर देता है, "क्या

में सीटी बजाता हूं? नहीं, प्रभो! आप ही-आप सीटी बजती है।"

कोई बुलबुल या कोयल ज्यों ही ऊँचे सरू के वृक्ष की चोटी पर बैठती है, त्यों ही वह पूरे आनन्द से गाना शुरू कर देती है।

क्षुद्र अहं को अनन्तता में झोंक दो। ईश्वर करे कि तुम जीवन, प्रकाश और प्रेम (सत-चित्-आनन्द) से अपनी एकता अनुभव करो, और तुरन्त ही परम कल्याण का प्रवाह तुम से सुखमय साहसी कार्य और बुद्धिमानी तथा नेकी के रूप में शुरू होगा। यह है ईश्वर-प्रेरित जीवन, यह है तुम्हारा पैदायशी हक़।

"From himself he flies,
Stands in the sun, and with no partial gaze,
Views all creation; and he *loves* it *all*
And blesses it, and calls it very good."
(Coleridge)

अर्थः—अपने आपसे वह उड़ता है,
धूप में खड़ा होता है। और बिना किसी पक्षपातपूर्ण दृष्टि के
सम्पूर्ण सृष्टि को देखता है; और वह उस सब को प्यार करता है
और उसे आशीर्वाद देता है, और उसे अति उत्तम कहता है,
(कोलरिज)

शोपेनहार कहता है, "अपने आप में सुख पाना कठिन है, पर उसे कहीं अन्यत्र पाना असम्भव है।"

चतुर क्षुद्र अहं के होते हुए भी सब बड़ा कार्य अकर्तृत्व भाव से होता है, और क्षुद्र अहं द्वारा नहीं होता। सूर्य अपने पूर्ण प्रकाश से इसी लिये चमकता है कि वह निष्काम साक्षी है। और देखो! नदियां अपने वर्फीले पालनों (वरफस्तान) से खुल जाती (निकल आती) हैं। हवा के झोंके प्रसन्नता से नाचने लगते हैं, सारी प्रकृति कर्मशील हो जाती है, पशु जाग पड़ते हैं, पौधे बढ़ते हैं, गुलाब और अन्य फूल विकसित होते हैं, और पुरुषों. स्त्रियों तथा बच्चों के नेत्र रूपी चिन-गारीदार फूल भी सूर्य के प्रचण्ड प्रताप की मौजूदगी मात्र से ही खिल जाते हैं।

ऐ आनन्दमय! तुम्हें सिर्फ सब की आत्मा, प्रकाश के मूल, हर्ष के चश्मे की तरह चमकना है। फिर तो तेज, जीवन, कर्मण्यता स्वभावतः तुम से फूटने लगेगी। फूल खिलता है और सुगंधि स्वतः उस से फैलती है।

पैरने की कल को न जानने वाला यदि कोई मनुष्य संयोग से झील में गिर पड़े, तो पानी स्वभावतः उसे ऊपर उठा देगा, परन्तु सावधानी हट जाने से और बेतहाशा हाथ पैर मारने से वह डूब जाता है। इसी तरह फिक्र और चिन्ता का मारा हुआ, प्रयत्नशील, तुच्छ अहं भाव मनुष्य को डुबा देने वाला गोता है। ऐसा जलाल-ए-रूमी कहता है।

"Heavenly manna was showered daily to thee
 Israelites in the forest, but
Some graceless scoffers out of moses' host
 Dared to demand the onions,
And manna was lost."

इसराईलियों के लिये जंगल में,
स्वर्गीय वंशलोचन की नित्य वर्षा होती थी

किन्तु मूसा के समूह के दुश्शील कटाक्षकों (मसखरों) ने
पियाज़ मांगने की हिम्मत की,
और वंशलोचन चला गया।"

सिर किससे दर्द करता है,कमर किससे झुक जाती है,सीना किस से फंस जाता है? पैरों के बदले मूड़ के बल चलने से। अपने पैरों को ज़मीन पर रहने दो, और (स्वर्गीय हर्ष से परिपूर्ण) अपना सिर आकाश में रक्खो। दैवी प्रबंध को उलटो नहीं। पृथिवी को अपने सिर पर न रक्खो और ऐसे जीवनको समझदारी का जीवन न कहो। दिखावों (आभासों) को दैवी असलियत (आत्मा) से अधिक गम्भीरता से न ग्रहण करो।

कहा जाता है कि एक मनुष्य धरती के फूलों की तलाश में जंगल में चलता हुआ शाहबलूत के वृक्ष अपने पैरों से कुचलने लगा। प्यारे, तुच्छ लाभों और हानियों पर तुम्हारा ध्यान इतना क्यों जम जाय कि अनन्त आनन्द (आत्मा) तुमसे छूट जाय? क्या ज़िम्मेदारी से लदा हुआ, कर्त्तव्य का मारा हुआ, प्रतिष्ठा से पगा हुआ (मिथ्या) अहं (अहंकार) वास्तव में कोई काम करता है? तब तो घोड़े के पुट्ठे पर बैठी हुई एक मक्खी भी दावा कर सकती है कि मैं ही घोड़ा दौड़ाती और गाड़ी हांकती हूं।

तुच्छ मैं (अहंकार) को परम आह्लादकारी सत्य प्रस्फोट (effulgent out burst) के मार्ग में न घुसने दो। भरोसा करो, विश्वास रक्खो उस शक्ति पर। सच्चा अहं (आत्मा) जिसकी उपस्थिति के कारण यह विचारा छोटा सा अणु (ameaba) अनजाने विकसित होकर तुम्हारे दैवी, मानवी रूप तक पहुँचा; वह परम आत्मा, वह दैवी-विधान अब भी मौजूद है। और वह परमेश्वर न तो सोया हुआ है और न

मर गया है, इस लिये गिरने का कोई डर नहीं है।

Like birds that slumber on the sea
Unconscious where the current runs,
We rest on God's infinity
On bliss that circles stars and suns,

Says the Brahma charin of America (Thoreau)
"Whate'er we leave to God, God does
And blesses us ;
The work we choose sh'd be our own
God leaves alone."

चिड़ियों के समान जो समुद्र पर सोते हैं
और इससे बेखबर हैं कि धारा कहां बहती है,
हम परमेश्वर की उस अनन्ता और आनन्द पर
विश्राम करते हैं, कि जो नक्षत्रों और सूर्यों को घेरे हुए हैं।

अमेरिका का ब्रह्मचारी (थोरो (Thoreau) कहता है
"जो कुछ हम ईश्वर पर छोड़ देते हैं, उसे ईश्वर स्वयं करता
और हमें आशीर्वाद देता है;
जो काम हम आप चुनते हैं, वह हमारा निजी होना चाहिये
उसे ईश्वर अलग छोड़ देता है।"

कष्ट और पीड़ा अपने आप को कैदी मान करने, और अवस्थाओं तथा परिस्थितियों का गुलाम अनुभव करने का दूसरा नाम है। एकाकीपन के सब नास्तिकता पूर्ण भ्रमों को झाड़ दो। यदि बाहरी प्रकृति का शासक आत्मा तुम्हारे

निजी अभ्यन्तर आत्मा से भिन्न होता तो तुम्हारे लिये हाथ मलने, मूड़ लटका लेने तथा नष्ट होने के सिवाय और कोई उपाय बाकी न रह जाता। परन्तु हालत यह है कि एक ओर तो तू परिस्थितियों से घिरा हुआ मालूम देता है और दूसरी ओर वही परिस्थितियां और हालतें भी तू ही स्वयं मालूम देता है। दर्पण मुझ में है (मेरे हाथ में) और मैं दर्पण में हूं।

"I heard a knock—a hard blow
On my door and cried I "who is it ? Ho!"
I wondering waited entranced, and lo !
How soft and sweet Love whispered low,
" 'Tis thou that knockest, do you not know"

"मैंने अपने द्वार पर एक खटखटाहट, एक कड़ी ठोकर
सुनी और मैंने पुकारा "कौन है ? अरे !"
मैं चकित होकर दरवाजे में राह देखता रहा, और देखो !
कोमल और मधुर प्रेम स्वरूप ने कैसे धीरे से कहा,
"तुम्हीं तो हो जो खटखटाहट करते हो, क्या तुम नहीं जानते" ?

मुसलमान धर्मग्रन्थों की सच्ची टीका के अनुसार मनुष्य में परम (ईश्वर) को जानने से इनकार करने के कारण आर्कऐंजल भी दोज़ख (नरक) में डाल दिया गया था (देखो अलस्त्, कालूबला, इत्यादि), और घोर पापी लोग भी मनुष्य (अहमद) में ईश्वर (अहद) अनुभव करने के कारण स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

"मेरा आत्मा अन्य सब का आत्मा है, ऐसा यह असली,

सजीव ज्ञान सच्चा ज्ञाता इसलाम (विश्वास या श्रद्धा) है।

इसे केवल विश्वास कहना इसके साथ न्याय करना नहीं है। यह "अन्तिम विज्ञान" (या वेदान्त ज्ञान) है। यह सब कलाओं की कला है।

डाक्कटर डी० एस० जार्डन (Dr. D. S. Jardan) कहते हैं, सत्य की अन्तिम परीक्षा यह है कि "क्या हम उसे काममें ला सकते हैं? अथवा क्या हम उससे काम ले सकते हैं? क्या हम अपना जीवन उसे सौंप सकते हैं?"

और तुम बेखटके अपना जीवन और सर्वस्व सारे दृश्य के इस आधारभूत तथ्य को सौंप सकते हो, कि "मैं और मेरा पिता एक हैं।" "वह तू है।" "तत्त्वमसि"

केन्द्राकर्पण के क़ानून पर तुम्हारा विश्वास चाहे तुम्हें धोखा दे दे, किन्तु आत्मिक एकता का क़ानून कभी धोखा नहीं देता। इस एकता की उपलब्धि होते ही सम्पूर्ण सृष्टि को तुम अपने शरीर के तुल्य ही वर्ताव करते पाओगे। ऐ मायामुग्ध अमर (deluded immortal) ! सोना और चाँदी तुम्हारे जीवन का बीमा नहीं कर सकते। तू ही है जो प्राण को जीवन, सोने और चाँदी को दमक, और सूर्य तथा नक्षत्रों को प्रकाश देता है।

लोग शीघ्रता से उन्नति इस लिये नहीं करते कि बाहरी सम्मति, हाव भाव इत्यादि वस्तुओं का बोझ महान् हिमालय की तरह उनकी पीठ (नहीं, छाती) पर लदा हुआ एक पग भी नहीं बढ़ने देता। रोगी अंधविश्वास से, परिच्छिन्नता से अपने को छुड़ाओ। तुम्हारे चित्त में ऐसा शिरका होना चाहिए कि जब कभी दुनिया उसमें डाली जाय, तभी वह गल जाय।

सार्वभौम ज्ञानाग्नि (आत्मज्ञान) विश्व को गलाते हुए

भी सदा की भाँति पारदर्शक बनी रहेगी। यदि तुम ठीक विचार करोगे तो आसमान का गिरना या पृथ्वी का फटना तुम्हारे चलने का संगीत होगा। कोई शत्रु तुम्हें कभी नहीं देख सकता, और न तुम उसको। तुम उसका खयाल तक भी नहीं कर सकते।

संगीत में विभिन्न स्वर नियमित क्रमपरम्परा से (कारण और कार्य की तरह) एक दूसरे के आगे पूर्वगामी और अनुगामी हों, किन्तु केवल स्वरों की परीक्षा और तुलना से स्वर-साम्य (एकतानता symphony) समझ में नहीं आता। परन्तु जो गम्भीरतम भावना उस गान की प्रेरक होती है, उस गान को धारण करती है, जो उस का मूल और परिणाम होती है, अर्थात् उस का आदि और अन्त होती है, उस से उन स्वरों के सम्बन्ध के अनुभव से स्वर-साम्य का पता चलता है।

इसी प्रकार प्रकृति के ऊपरी नियमों और बाह्य हेतुओं के ऊहापोह से प्रकृति की व्याख्या नहीं होती, किन्तु उसके "मनुष्य शरीर बन जाने पर" वह समझ में आती है।

जब तक तुम सब को भान न करोगे, तब तक तुम सब को जान नहीं सकते। असलियत में गोता लगाना, नामों और रूपों के नीचे थाह लेना, वनों और उपवनों में, पहाड़ों और नदियों में, दिन और रात में, मेघों और नक्षत्रों में आज़ादी से गुज़रना, पुरुषों और नारियों में पशुओं और फिरिश्तों में, हरेक और सबके आत्मा की तरह आज़ादी से गुज़रना, यही जीवन है, यही आत्म-ज्ञान है, यही असली बुद्धिमानी है।

"The whole world is bound to co-work with one who feels himself one with the whole world."

"जो समग्र संसार से अपने को अभिन्न समझता है, समग्र संसार उसकी सहकारिता के लिये बाध्य है।"

कारणलोक वा कारण शरीर में ज्ञान (सत्य के सजीव ज्ञान) की उपलब्धि हो जाने पर वह (ज्ञान) अत्यन्त प्रेम हो जाता है; अर्थात् सब और सब से अभिन्नता की भावना उत्पन्न हो जाती है, नित्य परमानन्द रहता है, जो ज्वाज्वल्यमान सूर्य की भांति है-यद्यपि वह (ज्ञान) कोई फल नहीं चाहता, कोई पुरस्कार नहीं मांगता, और कुछ भी नहीं मांगता (क्योंकि मानसिक लोक में वह ज्ञान अपने को त्याग में प्रकट करता है), तथापि स्थूल लोक में अद्भुत तेज और शक्तिशाली कार्य की तरह (वह ज्ञान) अपने को प्रगट करता है।

इस लिये उपलब्ध ज्ञान, प्रेम के द्वारा कर्म में फल का त्याग रूप होता है।

(1) I have no scruple of change, nor fear of death,
Nor was I ever born,
Nor had I parents.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute, Bliss Absolute,
I am That, I am That.

(2) I cause no misery, nor am I miserable,
I have no enemy, nor am I enemy.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute, Bliss Absolute,
I am That, I am That.

(१) मुझे परिवर्तन से कोई परहेज़ नहीं, और न मौत का डर है,
न कभी मैं पैदा हुआ था,
न मेरे वालदैन थे।
मैं वस्तुतः सच्चिदानन्द स्वरूप हूं,
वही मैं हूं, वही मैं हूं।

(२) मैं दुःख का कारण नहीं होता, और न मैं दुःखी हूं,
मेरा कोई शत्रु नहीं है, और न मैं शत्रु हूं।
मैं हूं परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं वही हूं, मैं वही हूं।

(३) मैं विना रूप और विना सीमा के हूं,
देश से परे और काल से परे हूं,
मैं हरेक वस्तु में हूं।
मैं विश्व का कल्याण हूं,
सर्वत्र मैं हूं।
मैं हूं परम सच्चिानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूं, मैं ही वह हूं।

(४) मैं शरीर या शरीर के परिवर्तनों के विना हूं,
मैं न तो इन्द्रिय हूं और न इन्द्रियों का विषय।
मैं हूं परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूं, मैं ही वह हूं।

(५) मैं न पाप हूं, न पुण्य,
न मान्दिर, न पूजा,
न तीर्थ-यात्रा, न पुस्तकें।

(3) I am without form, without limit,
Beyond space, beyond time,
I am in everything.
I am the bliss of the Universe,
Everywhere am I.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute, Bliss Absolute,
I am That. I am That.

(4) I am without body or changes of the body,
I am neither sense; nor object of the senses.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute, Bliss Absolute.
I am That, I am Thát.

(5) I am neither sin, nor virtue,
Nor temple, nor worship,
Nor pilgrimage, nor books.
·I am Existence Absolute, Knowledge Absolute, Bliss Absolute.
I am That, I am That.

—— o ——

(6) Within the temple of my heart
The light of love its glory sheds.
Despite the seeming prickly thorns
The flower of love free fragrance spreads.
Perennial springs of bubbling joy
With radiant sparkling splendour flow.

मैं हूं परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूं।

(६) मेरे मन मन्दिर के अन्दर
प्रेम का प्रकाश अपना तेज डालता है।
देखने में चुभने वाले कांटों के होते हुए भी,
प्रेम-पुष्प स्वच्छन्द सुगन्ध फैलाता है।
प्रफुल्लित प्रसन्नता के अव्यय स्रोत,
प्रकाशमय चिनगारीदार दमक से बहते हैं।
मस्त करने वाले मधुर स्वर
मंद पवन के पंखों पर उड़ रहे हैं।
हाँ ! शान्ति और कल्याण और मधुर ध्वनी—
आनन्द, अरे, कैसा दैवी आनन्द बिराजमान है।
सुख स्वर की बहती (लहराती) वहिया,
यह परम (आनन्द की) मेरी है।
स्वतंत्र और सुनहले पंखों की चिड़ियाँ।
हर्ष और प्रशंसा के प्रमोदमय गीत गाती हैं।
प्रफुल्लित चश्मे के मधुर बाल बच्चे।
स्वागत की मधुर तानें लेते हैं।
वर्धिष्णु प्रभात के गुलाबी रंग।
चरागाहों, झीलों और पहाड़ियों को अलंकृत करते हैं।
शाश्वत अनुकम्पा का निम्बस *(nimbus)
अमृत के शीतल छींटे मधुरता से बरसाता है।
मनोहर रंगों के इन्द्र-धनुष की मेहराब

* प्रकाश की किरणों का घेरा जो महात्माओं वा अवतारों के सिर के इर्द गिर्द दिखाई देता है।

Intoxicating melodies
On wings of heavenly zephyrs blow.
Yea ! Peace and bliss and harmony—
Bliss, oh, how divine !
A flood of rolling symphony
Supreme is mine.
Free birds of golden plumage sing
Blithe songs of joy and praise.
Sweet children of the blushing spring
Deep notes of welcome raise.
The roseate hues of nascent morn
The meadows, lakes, and hills adorn.
The nimbus of perpetual grace
Cool showers of nectar softly rains.
The rainbow arch of charming colours
With smiles the vast horizon paints,
The tiny pearls of dewdrops bright
Lo ! in their hearts the sun contain.
O Joy ! the Sun of love and light,
The never-setting Sun of life
Am I, am I.
That darling dear
Came near and near—
Smiling, glancing,
Singing and dancing.
I bowed with sigh
He didn't reply.

मुस्कुराहटों के साथ (इस संसार के) विशाल मंडल को
रँगती है।

चमकीले ओस की बूँदों के नन्हे मोती
देखो! अपने हृदयों में सूर्य को धारे हैं।
अरे हर्ष! प्रेम और प्रकाश का सूर्य,
जीवन का कभी अस्त न होने वाला सूर्य,
मैं हूँ, मैं हूँ।
वह प्रियतम प्यारा
मेरे नगीच और नगीच आया—
मुस्कारता हुआ, कनखियों से देखता हुआ,
गाता हुआ और नाचता हुआ आया,
मैं ने आह भरते हुए नमस्कार किया,
उस ने उसका उत्तर नहीं दिया,
मैं ने प्रार्थना की और दण्डवत की,
वह छोड़ कर चला गया।
(मैंने कहा कि)
"क्यों ऐसे मुझ से अलग होते हो?
कृपया ठहरो, जाओ नहीं।"
उस ने धीमे से जवाब दिया
"नहीं, नहीं।"
मैं बहुत गिड़गिड़ाया
"प्रभु! कृपया मेरे पास बैठो।"
उसने उत्तर दिया
"यदि तू मेरे पास बैठना चाहता है?
तो जा अपने पास बैठ।"
मैं—"मुझ से बोलो तो।"

I prayed and knelt,
He went and left.
"Why cut me so ?
Pray, stay, don't go,"
He answered slow.
"No, no,"
I entreated hard
"Pray, sit by me, Lord."
He answered,
"Wouldst thou sit by me ?
Then do please sit by thee."
I—Do unto me speak.
He—"Enter the inner silence deep."
I—"I would clasp thee and kiss,
Dear, grant me but this,"
He—"Wilt thou clasp thyself and kiss,
I am one with thee, why miss ?"
My form divine
I am image of thine.
Why seek the form,
O source of charm ?
With thee I lie
You outward fly.
Don't slight me so,
Nor outward go.

—o—

वह—"आन्तरिक गहरी चुप्पी में तुम प्रवेश करो।"

मैं—मैं 'तुझे पकड़ूं और चूमूंगा,

प्यारे, मुझे इतनी भिक्षा दो।"

वह—"क्या तू अपने को पकड़े और चूमेगा?

मैं तुझ से अभिन्न हूं. क्यों भूलता है?"

मेरा दैवी रूप।

मैं तेरी प्रतिमा हूं,

तू क्यों रूपों को ढूंढता है?

ऐ शान्ति के मूल!

मैं तेरे साथ लेटता हूं।

तुम बाहर को भागते हो।

मेरा इतना तिरस्कार न करो,

मत बाहर जाओ।

——o——

राम-चरित्र नं० १

(अर्थात् परमहंस स्वामी रामतीर्थ के कुछ व्याख्यान जो कानपुर के मासिक पत्र रिसाला जमाना मे स्वामी जीके ब्रह्मलीन होने के बाद सन् १९०७ में यादगारे-राम के नाम से प्रकाशित हुए थे उन पर श्रीयुत रायबहादुर ला० बैजनाथ साहिब बी. ए. जज की लिखित प्रस्तावना।)

यह सामान्य नियम है कि धर्म प्रत्येक युग का अलग-अलग होता है। जो धर्म सत्ययुग में था, वह अब नहीं है। यह नियम गृहस्थों से भी उतना ही संबंध रखता है जैसा कि संन्यासियों से। अतः पूर्व काल में संन्यासी जंगलों में रहकर शिष्यों को ब्रह्मविद्या पढ़ाया करते थे, फल फूल खाकर निर्वाह करते थे, लोग उनके पास ब्रह्मविद्या सीखने जाते थे और वह कभी-कभी राजाओं की सभाओं में जाकर उनको उपदेश करते थे और उनके दोष प्रकट करते थे। अर्थात् वह काम करते थे जो आजकल समाचार पत्र करते हैं। उदाहरण के लिये नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से, जब उनको इंद्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली का राज मिला, जाकर विस्तार के साथ पूछा कि तुम अपनी प्रजा की रक्षा के लिये क्या-क्या करते हो। तुम में वे १४ दोष, जिन से राज्य नष्ट हो गए, हैं या नहीं? अर्थात् १ नास्तिकपन, २ झूठ, ३ क्रोध, ४ प्रमाद, ५ लापर्वाही, ६ योग्य पुरुषों का निरादर, ७ आलस्य, ८ चित्त की अस्थिरता, ९ केवल एक मनुष्य की सम्मति पर निर्भर करना, १० ऐसे लोगों से सम्मति लेना जो सम्मति देने के अयोग्य हों, ११ एक नियत बात को छोड़ना, १२ रहस्य का उद्घाटन करना, १३ शुभ कार्य को पूरा न करना, १४ बिना

विचारे किसी काम को करना। इन दोषों से वे राज्य भी जो कि सुदृढ़ थे नष्ट हो गए।

अब वह समय नहीं रहा, न वह संन्यासी हैं, न गृहस्थ हैं। वरन् आज कल के संन्यासियों को भी गृहस्थों की नाईं समय के साथ चलना पड़ेगा, अर्थात अपने विचारों को न केवल पूर्वीय वरन् पश्चिमीय विज्ञान और तत्त्वज्ञान से पूर्ण करके, न केवल एकांतवास में, ईश्वर स्मरण में, या शाब्दिक वादानुवाद में, या मठों या दावतों (भण्डारों, भोजन) में सदैव अपना समय व्यय करना होगा, वरन् संसार में रह कर उसके वासियों को अपने उत्तम वर्ताव और उपदेशों से कृतार्थ करना पड़ेगा। ऐसे साधुओं में स्वामी रामतीर्थ जी थे। उनको जो अनुभव अन्य देशों में प्राप्त हुआ, वह उन व्याख्यानों में जो इस पुस्तिका* (ज़माना रसाला से रचित यादगारे-राम) में प्रकाशित किए जाते हैं इस उद्देश्य से प्रकट किया गया है कि भारतवर्ष की उन्नति में उस से क्या लाभ हो सकता है।

स्वामी जी महाराज एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-वंशी पंजाब के रहने वाले थे। आपने सन १८९५ ई० में पंजाब युनिवर्सिटी में डिगरी पाई और गणित-शास्त्र के प्रोफ़ेसर रहकर बहुत समय तक लाहौर में रहे। सन् १९०१ में आपने केवल इस उद्देश्य से कि ब्रह्मविद्या केवल पुस्तकीय विषय नहीं वरन् ज्ञेय पदार्थ है, समस्त संबंधों को त्यागकर हिमालय के वन-गुफाओं में, एकांत में, रहना स्वीकार किया और कुछ काल के अभ्यास से जान लिया कि जो वस्तु पुस्तकों में लिखी है, वह केवल काल्पनिक नहीं है, वरन् यथार्थ और

---

* इस पुस्तक (जमाना-रसाला) के सब व्याख्यान इस ग्रन्थावली के पहिले भागों में प्रकाशित हो चुके हैं।

व्यावहारिक है। फिर पहाड़ से उतर कर मथुरा, आगरा और लखनऊ आदि में बहुत से व्याख्यान दिए। और अगस्त १९०२ में आप जापान होते हुए अमेरिका पहुँचे। वहाँ पर आप ढाई वर्ष के लगभग रहकर फिर भारतवर्ष में पधारे। आप को योरप के विज्ञान और दर्शन से उतनी ही जानकारी थी कि जैसे हमारे यहाँ के शास्त्रों से। अतः जो कुछ आपने कहा, वह निज अनुभव का फल था। और आशा है कि उनके उपदेश पर हम सब लोग आचरण करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वामी जी में भक्ति और ज्ञान, दोनों इस सुंदरता से थे कि जो प्रायः लोगों में कम देखने में आते हैं। उनको मौलाना रूम, शम्स तबरेज़ और हाफ़िज़ की रचनाओं में उतनी ही गति थी जितनी कैंट, हेगल, फिगटे, शोपनहावर, स्पाइनोज़ा आदि जर्मन तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा सुक़रात, अफ़लातून, अरस्तू आदि यूनानी तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा कारलाइल, कूपर, टेनीसन आदि इँगलैंड के तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा इमर्सन, थोरो, वाल्ट ह्विटमेन आदि जो अमेरिकन तत्त्ववेत्ताओं में, अथवा उपनिषद् और उसके व्याख्याकार, शंकर, नानक, कबीर, गौतम, बुल्लाशाह आदि भारतीय तत्त्ववेत्ताओं में थी। उन्होंने इन सब के वाक्यों पर विचार करके जो परिणाम निकाले, वह यह सिद्ध करते हैं कि एक शिक्षित पुरुष यदि सत्य का ज्ञान करने की ओर ध्यान दे, तो ज्ञान पा जाने से वह दूसरों पर किस सौंदर्य और उत्तमता के साथ उसे प्रगट कर सकता है। यह सत्यता सब देशों और सब भाषाओं में एक ही है और एकही रहेगी। केवल उसके प्रकट करने के ढँग अलग-अलग हो सकते हैं। और जो कुछ दोष उसके प्रकट करने में हो सकता है वह केवल इस कारण से होता है कि मनुष्य केवल नाम-रूप में बद्ध रहकर उसको प्रकट करता

है। अतः यदि उस व्यक्ति का, जो उस सत्यता को प्रकट करना चाहे, हृदय का दर्पण इतना मलिन हो कि जिसमें उसका प्रतिबिंब साफ़ न पड़ सके, तो उसका उस सत्यता का प्रकाश भी दोषपूर्ण होगा। यदि उसका हृदय दर्पण निर्मल होगा, तो उसका वर्णन भी विमल होगा। यही अंतर उन लोगों में है कि जो अनुभव से सत्यता को प्रकट करते हैं और उन लोगों में कि जो अध्ययन या श्रवण से करते हैं।

मनुष्य के लिये केवल वह वस्तुएँ जो ज्ञानेंद्रियों से जानी जाती हैं, असली नहीं हैं; वरन् उनसे अधिक एक और वस्तु असली है, जो न ज्ञानेंद्रियों के अधिकार की सीमा में है और न जिह्वा से कही जा सकती है और न विचार में आ सकती है। वह वस्तु क्या है, उसको कोई प्रकट नहीं कर सकता। केवल उसको दूर से व्यंजना के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि वह यह नहीं है, यह नहीं है। यही शैली हमारे यहाँ के शास्त्रों में वैसी ही ग्रहण की गई है जैसा कि योरप के तत्त्वज्ञान में। अतः महाभारत में कहा गया है कि वह वस्तु जो सत् है, वेदों से नहीं जानी जाती, तो भी वेद उसके बताने के द्वार हैं। जैसे कि द्वितीया के चंद्रमा को दिखलाने के लिये किसी वृक्ष की टहनी दिखाई जाती है और कहा जाता है कि उस टहनी से परे जो वस्तु है वही चंद्रमा है, ऐसे ही यह सब तत्त्वज्ञान, और धार्मिक पुस्तकें और धर्मोपदेश केवल दृष्टि जमाने के लिये टहनियाँ हैं, उससे आगे प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने अन्तःकरण की शुद्धि और अभ्यास से सत्यता को पहुँचना पड़ता है। इसी उद्देश्य से सभी धर्मों में त्याग, सत्यता, विश्वास, और सदाचरण और अभ्यास पर इतना

अधिक ज़ोर दिया गया है। तात्पर्य सब का यह है कि मनुष्य प्रथम अपने सांसारिक-कर्त्तव्यों को बिना किसी स्वार्थ के पालन करे, केवल यह समझ कर कि उनको पालन करना उसका धर्म है। दूसरे, वह जो कुछ करे वह ईश्वरार्पण बुद्धि से अथवा परमार्थ-मार्ग में करे। तीसरे, सदैव उसी का ध्यान, उसी की भक्ति, और उसी की चर्चा से अपने मन को संसार से हटाकर उसकी ओर दृढ़ रूप से बाँधे। और चौथे, समस्त बाह्य-विषयों को भूलकर अंत में तदाकार और तद्रूप होजाय। यही समस्त संसार के धर्मों का यथार्थ और अंतिम ध्येय है। अतः महाभारत में कहा गया है कि धीर अर्थात् ज्ञानी पुरुष वहीं पर निवास करते हैं जहां सबका मूल वा अन्त है; मध्य में निवास नहीं करते। सब के अंत में ठहरना ही यथार्थ कल्याण है। जो कुछ अल्प लाभ है, वह मध्य में ही ठहरने में है। अतः धर्मा-धर्म के विचार को त्याग दो, सत्य और मिथ्या के विचार को भी त्याग दो, और इन दोनों को त्यागकर उस विचार को भी त्याग दो कि जिससे इनको छोड़ा था। अर्थात् सब विचारों को अपने मन से हटाकर, धर्माधर्म और सत्यासत्य को मन से ऐसा दूर करदो कि वह वस्तु जो वस्तुतः सत्य है, उस में मन लीन हो जाय। और फिर यह विचार कि क्या वह लीन हो गया, उसको भी उठा दो। यही धर्म और शास्त्र की परमावस्था है, और इसी पर समस्त उपासना और ज्ञान का अंत है। और इसी को इनके व्याख्यानों में प्रकट किया गया है। "नक़द धर्म" से, जैसा कि स्वामी रामतीर्थ जी कहते थे, तात्पर्य यह है कि अपने कर्तव्य को कर्तव्य जानकर बिना किसी निजी हानि-लाभ के विचार के पूरा करो और फ़र्ज़-औला अर्थात् आत्मकृपा से तात्पर्य यह है कि

अपने आत्मा को, जो सत्य है, उसको सबकी आत्मा में, अर्थात् सबमें, उपस्थित और विद्यमान देखो और वह परिच्छिन्नता का आवरण जो तुमको दूसरों से पृथक् करता है, उसको तोड़कर नाम-रूप के बंधन से मुक्त होकर जैसे तुम वास्तव में हो, वैसे ही हो जाओ। जितना भेद और भिन्नता एक जाति या धर्म-सम्प्रदाय का दूसरी जाति या धर्म-संप्रदाय से है, वह केवल इस कारण से है कि मनुष्य ने स्वयं अपने अज्ञान से अपने आपको उस बंधन में, कि जिसमें उसको नहीं डालना चाहिए, डाल लिया है। इसीसे यह समस्त झगड़ा मेरे-तेरे का है। जब यह अज्ञान, सत्य ज्ञान के दीपक से, दूर हो जायगा, तो फिर यह कहना कि तुम हिंदू हो, मैं मुसलमान हूँ, वह ईसाई है, वह यहूदी है,, कहाँ रहेगा? यही तात्पर्य स्वामी रामके लेख 'अकबरे-दिली का है, अर्थात् अपने हृदय को ऐसा विशाल बना लो कि कोई स्थान इन छोटे और परिच्छिन्न विचारों का, कि तुम्हारा धर्म और है, मेरा धर्म और है, मैं तुम नहीं, तुम मैं नहीं, शेष न रहे। यही वर्ताव का ढंग समस्त संसार के ऋषियों, पैगम्बरों और धर्म-प्रवर्तकों का रहा है। संसार के लोग उनको अपने से गया गुज़रा कहते हैं। निस्संदेह वह अपने से गये गुज़रे थे, अर्थात् अहं भाव से परे होगए थे। किंतु संसारी लोग उनको उनके जीवनकाल में न पहचान सके, वरन् उनके बाद उनको समझे। इसी कारण श्रीकृष्णजी को दुर्योधन और शिशुपाल आदि ने धूर्त और छलिया कहा, बुद्ध को नास्तिक बतलाया, शंकर को अप्रकट (भीतर से) नास्तिक कहा, सुकरात को विषका प्याला पिलाया गया, मसीह को सलीब पर और मंसूर को दार (सूली) पर चढ़ाया गया। वे लोग उस समय तो पागल समझे गए, परंतु उन्हीं के पाग-

लपन के स्रोत की एक तरंग ऐसी है जो मनुष्यको जीवित और स्थिर रखती है। अतः ऐसे लोगों को संसार कुछ कहे, उनका काम उनके शरीर से पृथक होने के पश्चात् फलता है। इसी कारण कहा गया है कि सच्चा संन्यासी वही है कि जो अपने शरीर को मानवी कल्याण के वृक्ष की खाद बना ले।

स्वामी रामतीर्थ जी ने, जितने दिन कि वह अमेरिका और जापान में रहे, अपनी नफसकुशी (आत्मनिग्रह वा स्वार्थ त्याग) की वही बान रक्खी कि जो भारत में थी। यहाँ तक कि चिरकाल तक केवल शाकाहार और दूध-पान करके अपना निर्वाह किया। भारतवर्ष में लौट आकर भी उन्होंने वही ढँग जो ऋषियों का था जारी किया, अर्थात् इस बात को उचित न समझा कि वेदांत का जानने वाला सर्व-भक्षी, अर्थात् विना विचारे प्रत्येक वस्तु का खाने वाला, या सर्ववर्ती अर्थात् सामाजिक सिद्धांतों की उपेक्षा करके शुभा-शुभ विवेक त्याग कर जैसे चाहे वैसा कर्म करने वाला हो। परंतु इससे एक बहुत बड़ा उपदेश मिलता है जो इस समय के साधुओं को सीखना चाहिए। योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि ज्ञानी के यही वाह्य चिह्न हैं कि उसके काम- अर्थात् विषय-इच्छा, क्रोध, लोभ, मोह नित्य प्रति कम होते जायँ।

इस समय हमारे यहाँ धार्मिक संप्रदायों और जातीय प्रभेदों की कुछ कमी नहीं और वर्तमान-कालिक शिक्षा और नए-नए विचारों की बदौलत प्रत्येक धर्म और संप्रदाय के लोग अपनी अपनी सामाजिक और धार्मिक दशा को सुधा-रने पर तुल गए हैं। प्रत्येक स्थान पर धार्मिक और जातीय सुधार की सोसाइटियाँ मौजूद हैं, सैकड़ों पुस्तकें इन विषयों पर प्रति दिन प्रकाशित होती हैं, हर वर्ष हर संप्रदाय के लोग जलसे करते हैं, परंतु यहाँ तक देखा जाता है, धर्म और

सोसाइटियों की दशा में कुछ अच्छाई नहीं दिखाई देती। पूर्व काल में जब इतनी सोसाइटियाँ और इतनी पुस्तकें और समाचार-पत्र और व्याख्यान नहीं थे, एक मनुष्य सारे देश को हिला सकता था। गौतम बुद्ध के समय में कौन सी सोसाइटियाँ और समाचार पत्र थे; परंतु बुद्ध धर्म आज संसार के समस्त धर्मों से अधिक फैला हुआ है। शंकरजी महाराज ६ वर्ष की आयु में घर से बाहर निकल कर अकेले लँगोटी बंद, अमर कंट में, नर्मदा के किनारे श्री विन्दाचार्य के शिष्य हुए और फिर १५ वर्ष की आयुतक बद्रीनाथ में रह कर वह १६ व्याख्यायें (व्यास) उपनिषदों, भगवद्गीता, और ब्रह्मसूत्रों आदि पर कीं कि जो जब तक संसार स्थित है, तब तक रहेंगी। और नारदकुंड में डुबकी लगाकर बद्रीनाथ की मूर्ति निकाली। लेखक ने उस स्थान को देखा है। वहाँ पर जेष्ठ के महीने में इतनी सर्दी थी कि पानी में हाथ डालना असंभव था और गंगा के प्रवाह का वेग और पानी का भँवर ऐसा था कि कल्पना में भी नहीं आ सकता कि कैसे कोई व्यक्ति डुबकी लगाएगा। फिर १६ और २६ वर्ष की आयु के मध्य में ऐसे प्रसिद्ध और सुयोग्य पंडित जैसे कि मंडन मिश्र, प्रभाकर और कुमारिल भट्ट आदि थे, शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया और अनेक मंदिरों को जो नष्ट हो गए थे, नए सिरे से स्थापित किया। यही दशा रामानुज, नानक और कबीर की थी। ये लोग न सुसाइटियों में काम करते थे, न इनके पास रुपया था, न कोई सांसारिक सामान था, न इनका कोई सहायक था, वरन् सब ओर से इनका विरोध होता था। सूरदास ने अंधेपन की दशा में श्रीकृष्ण की भक्ति में एक लाख भजन लिखे जो प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर अब तक हैं। तुलसीदास को उनकी स्त्री ने यह

कहकर कि जैसे तुम मेरे इस अपवित्र शरीर पर लट्टू हो वैसे यदि तुम श्रीरामचन्द्र के ऊपर मोहित हो जाओ, तो तुम्हारी मुक्ति हो जाय, ऐसा भक्त और ज्ञानी बना दिया कि उनके वचनों का हर छोटे बड़े पर अब तक प्रभाव मौजूद है। वर्तमान काल में भी केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्दजी और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी विना किसी सांसारिक सामान के ऐसे हुए कि जिन्हों ने देश की दशा में कुछ न कुछ परिवर्तन कर दिया। इसका कारण यह था कि इन सब लोगों को एक बात की धुन लगी थी और वह उस धुन में अपने को भूल गए थे। इसी कारण वह लोगोंको अपने साथ खींचे लिए चले जाते थे। और चूंकि इस समय के सुधारकों और जलसा करने वालों में ऐसी धुन अपेक्षाकृत कम है, इस लिये उनके वचनों का प्रभाव भी वैसा ही है। चारों ओर से यही कोलाहल सुनाई पड़ता है कि धर्म को बढ़ाओ, धर्म को बढ़ाओ, परंतु धर्म वैसे का वैसा ही दुर्बल और निर्जीव है। पहले समयों में इतना कोलाहल तो नहीं सुनाई देता था, परंतु धर्म कुछ न कुछ बढ़ जाता था। कारण यह था कि जो धर्म के बढ़ाने वाले थे, उन लोगों ने पहिले अहंकार को मिटा दिया था, आत्मसुधार कर लिया था, सारे संसार को अपना समझ लिया था और फिर कमर बाँधकर जाति-सुधार के मैदान में कूदे थे। इस समय जहाँ तक दृष्टि डाली जाती है, ऐसे मनुष्य न साधुओं में दृष्टिगोचर होते हैं, न गृहस्थों में। साधु बेचारे तो अपने मठों और शाब्दिक झगड़ों व भंडारों में ऐसे प्रवृत्त हैं कि उनको दूसरों की भलाई सोचने का अवकाश ही नहीं है। गृहस्थों में जो बेचारे ग़रीब और निर्धन हैं, उनको न पेट को रोटी है और न तन को कपड़ा है और समस्त आयु पेट के धंधों में पिस

कर मर जाते हैं। मध्यश्रेणी के लोगों को अपने व्यापार और धंधे, और शोक के साथ कहना पड़ता है, कि मुक़दमेबाज़ी और झगड़ों से इतना समय नहीं मिलता कि वह भविष्य की कुछ सोचें। वह लोग जो शिक्षित समझे जाते हैं, वह विचारे भी इधर अपनी रोटी की चिंता में व्यतिव्यस्त हैं, उधर आधुनिक शिक्षा ने उन मे लोगों से इतना पृथक कर दिया है कि अन्य अनेक भारतीय जातियों के अतिरिक्त एक जाति शिक्षित लोगों की भी होती जाती है कि जिसको सर्व-साधारण से बहुत कम संबंध है। रईसों, और बड़े आदमियों और राजाओं को अधिकतर भोग विलास से अवकाश नहीं मिलता, तो फिर यदि जाति अथवा धर्म का सुधार न हो, तो आश्चर्य ही क्या है? और जब तक इन सब खराबियों की जड़ दूर न होगी, यहाँ के लोग अपने आपको उस नक़्द धर्म के अनुसरण करनेवाले और उस आत्म-कृपाके अधिकारी और उस अकबरे-दिलीके रखनेवाले जो स्वामी जी महाराज ने कहे हैं न बनाएंगे, देशके सुधारने की आशा नहीं हो सकती। हमारे समस्त शास्त्रों का अंत इस बात पर है कि "वही देवता है, जो अपने समान सब को देखता है।" सारे धर्म का निचोड़ यही रक्खा गया है कि "मत करो वह काम दूसरों के लिये कि जिसको स्वयं तुम अपने लिये करने को तैयार न हो।" बौद्धिक तर्कों और वाद-विवादों की कुछ सीमा नहीं है। हर संप्रदाय और मतों की आज्ञाएं भी अलग-अलग हैं, प्रत्येक बुद्धिमान् अपनी-अपनी कहता है, अतः धर्म की असलियत का जानना अति कठिन है, परंतु उसकी कसौटी यह है कि वह वस्तु कि जिसपर समस्त संसार के लोगों को मत-भेद न हो और जिसको सब एकमत होकर मानें, वही सच्चा है। वह धर्म वह है जो ऊपर कहा गया है,

और उसी को इन लेक्चरों में भी प्रकट किया गया है। आशा है कि इनसे लोगों को लाभ होगा। सांसारिक लोग अपने कर्तव्यों को उत्तम-रीति से पालन करना सीखेंगे, शिक्षित लोग अपने अशिक्षित भाइयों से भिन्नता का आवरण उठा देंगे, साधु संन्यासी शाब्दिक झगड़ों व मठों और चेलों और भंडारों पर ही निर्भर रहना छोड़कर देश की भलाई में लगेंगे, और अपने आत्मा को सबका आत्मा जानेंगे। यदि इन व्याख्यानों से यह प्रयोजन कुछ भी पूरा होगा, तो मानों स्वामी जी की एक जीवित और चिर कालिक स्मृति (यादगार) स्थापित होगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

राम-चरित्र नं० २

भूमिका

(बाबू द्वारकाप्रसाद गुहर बरेली निवासी से लिखित)

मदद करता है ईश्वर बनके माँ बाप।
उसी की जो मदद अपनी करे आप॥

विचार था कि मजमुआ तसनीफ़ाते-गुहर के साथ गन्जीना-ए-जवाहराते-सखुन जिस में परम हँस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज-एम.ए. का जीवन चरित्र और अपनी भक्ति तथा सत्य-प्रेम भी दर्शाया है शामिल किया जाता, किन्तु उक्त स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र पद्य में पुस्तकाकार छपवा कर पबलिक में वितरण करने की इच्छा तीव्र थी, परन्तु चित स्थिर न होने के कारण सम्पूर्ण जीवन चरित्र पद्य में तैयार न हो सका। इसलिये कुछ हालात, जो हृदयाङ्कित और हस्त-लिखित थे, एकत्र करके उन्हें ही मजमुआ तसनीफ़ाते-गुहर से पृथक प्रकाशित करना उचित समझा।

स्वामी रामतीर्थ महाराज का सम्पूर्ण जीवन चरित्र सहित उपदेशों और प्रभाव शाली व्याख्यानों के हिन्दी-उर्दू और अँग्रेज़ी पुस्तकों में कई भागों में छपकर सर्व साधारण के दृष्टि गोचर हो चुका है, और उनके सुयोग्य शिष्य श्री नारायण स्वामी ने जिस योग्यता साहस और भक्ति के साथ उनकी बनाई हुई पुस्तकों को एकत्र करके ठीक २ हालात और कारनामों को पबलिक के सामने रखकर उनकी यादगार को क़ायम रखने का जो प्रयत्न किया है, वास्तव में इन तमाम खूबियों का उन्हीं के सिर सेहारा है। यह छोटा सा प्रेम का तोहफ़ा भी उन्हीं के समरपर्ण करना अच्छा होता, परन्तु

यह विचार करके, कि एक अति संक्षिप्त और अपूर्ण जीवन चरित्र उनकी और अन्य राम भक्तों की दृष्टि में अति तुच्छ होगा और उन पर पुस्तक छपाने का भार छोड़कर अलग हो जाना कायरपन की दलील है,मुझे श्री नारायण स्वामीजी की सेवा में पुस्तक पेश करने का साहस न हुआ। तथापि ईश्वर को कुछ ऐसा ही मंजूर था कि गत जून मास में मुझे स्वामी जी महाराज के बरेली में स्वतः दर्शन हो गये और मुझे अपने इस छोटे से लेख को उनकी भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया, जिस पर स्वामी जी महाराज ने इस छोटे से राम चरित्र को भी श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली में स्थान देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार इस छोटे से तोहफा का प्रकाशन भी श्री स्वामी नारायण जी की ही कृपा का फल है।

महापुरुषों का जीवन चरित्र विशेषतयः पद्य में गोस्वामी तुलसीदासादि योग्य और श्रेष्ठ कवियों के लिये लिखना तो कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु आज कल मुझ ऐसे साधारण योग्यता वाले मनुष्य के लिये एक ऐसे विद्वान और योग्य संन्यासी का जीवन चरित्र लिखना, जिसकी कीर्ति का डँका सारे संसार में बज चुका था और जिसके प्रभावशाली व्याख्यान लाखों नहीं बल्कि करोड़ों हृदयों पर अपना सिक्का बिठा चुके थे, और मिस्र, जापान और अमेरिका में जिस के गुणानुवाद गाये जा चुके थे, कोई आसान काम न था, फिर ऐसी दशा में जबकि दासत्व के वस्त्र पहिने हुए और समयानुकूल अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हुए और मित्र वर्गों की निस्स्वार्थ इच्छाओं को पूरा करते हुए अपना कर्तव्य पालन करने में दृढ़ रहना क्योंकर सम्भव था, इस लिये पाठकों तथा राम प्रेमियों से क्षमा चाहता हूँ और अपने प्रिय राम के समक्ष लज्जित हूँ कि पूर्ण जीवन चरित्र

पद्य में लिखने का कर्तव्य पालन न कर सका और साँसा-रिक धन्धों में फँसे कर अपने आप को स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का अनन्य भक्त कहाने का अधिकारी न बना सका।

प्रथम मुझे श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के चरणों में प्रेम होने का यह कारण हुआ कि सन् १६०२ ई० में, जब कि मुझे कविता में अभ्यास कम था, कविता की धुन में कतिपय समाचार पत्रों में अपना लेख भेजता रहता था और विना मूल्य समाचार पत्र भी मेरे पास आते रहते थे, मेरे पिता लखनऊ निवासी राय रोशन लाल जी और पितामह राय दीवान दीनानाथ जी का मेरी बाल्यावस्था ही में स्वर्ग वास हो चुका था, मैं अपने प्रिय भ्राताओं की सहायता से विद्योपार्जन करता रहा, परन्तु समय की प्रतिकूलता से अधिक विद्या प्राप्त न कर सका था कि कविता से दिन बदिन प्रेम बढ़ता गया और अशुद्धि शोधन के लिये श्रीमान् राजा इनायतसिंह साहब, इनायत, रईस लखनऊ व ताल्लुक़दार बरेली का शिष्य होने का अवसर मिला, जिनकी कृपा से मेरा साहस बढ़ता गया, यद्यपि अँग्रेज़ी भाषा प्राप्त करने में ध्यान कम रहा। अगस्त स० १६०२ ई० में उस्ताद इनायत की मृत्यु के पश्चात कई अवसरों पर मुझे अपने एक अज़ीज़ मलकुल शोरा मुन्शी द्वारकाप्रसाद उफ़क़ से मशवरा लेना हुआ और अधिकतर अपने एक विद्वान मित्र श्रीमान् मुन्शी खन्नू लाल तायब लखनवी मैनेजर गुलदस्ता बहार अवध लखनऊ से इसलाह का सावक़ा रहा, और मैं सन् १६०२ ई० से भिन्न २ समाचार पत्रों का नामा निगार भी रहा जिन में कभी २ रामतीर्थ जी महाराज के मनोहर उपदेश और प्रभाव शाली व्याख्यान मेरे चित्त को भाते रहे, और मुझे उनका शिष्य होने की इच्छा उत्पन्न हुई। मेरी यह इच्छा

पूर्ण न हो पाई थी और मुझे उनका शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त न हो पाया था कि अगस्त स० १६०७ के रिसाला आज़ाद लाहौर में एक लेख मिस्टर हरिगोविन्द प्रसाद निगम देहलवी की ओर से मेरी दृष्टि पड़ा जिसके प्रभाव शाली कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं, जिनका मेरे दिलपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और मेरी आँखों में आँसू डब डबा आये:—

"ज़ुबाँ पै बारे खुदाया यह किसका नाम आया।
कि मेरी नुत्क़ ने बोसे मेरी ज़ुबाँ के लिये॥

हमारा मोहसिने-शफ़ीक़, हमारा मुहिब्बे-रफ़ीक़ प्यारा राम, जिसकी एक उलफ़त भरी निगाह दिलों को मोह लेती है और जिसका एक नारा-ए-ओ३म् हज़ारहा मुर्दा दिलों में रास्ती और नेकी का बीज बो देता है, जिसके दर्शन से इन्सान नेक बनते थे और जिसकी सोहबत आदमी के चाल चलन को टकसाली और मिसाली बना देती थी, हमसे क़रीब २ एक साल के हुआ है रूपोश होगया। दश महीने से ज़्यादा होगये कि उस बुल बुल हज़ारदास्तान की मीठी २ आवाज़ मुश्ताक़ कानों में नहीं पड़ी और नरगिस वार मुन्तज़िर आँखों ने भी उस बद्रे-कामिलके नूरानी चेहरे का जल्वा नहीं देखा. जिसकी शुजाअतें गुज़श्ता मातमी दसमाह के क़ब्ल हज़ारों आँखों को नूरानी बनाती थीं, उस गुलेराना

खुदाया—ऐ परमात्मा, नुत्क़—वाक इन्द्रिय, मोहसिने शफीक—कृपाल,दर्दमन्द, मुहिब्ब रफीक—प्रीति करने वाला मित्र, नारा-ए ओ३म्—प्रणव ध्वनि, सोहबत—संगति, मिसाली—दृष्टान्तरूप वा दीपक स्वरूप, रूपोश—छुप गया अर्थात् ब्रह्मलीन हो गया, नरगिस—पुष्प, बद्रे-कामिलके—पूर्ण चाँद,नूरानी—प्रकाश स्वरूप, जल्वा—प्रकाश, दर्शन, शुजाअतें—दिलेरी, कब्ल—पूर्व, पहिले, गुलेराना—पुष्प।

की खुशबू खुशगवार ने इस आलमे-असफल को मुद्दत हुई मुअत्तर करना छोड़ दिया ॥

इस बुलबुले-खुशगो ने अभी इस चमन से परवाज़ किया ही था कि तमाम नेचर ने मातमी लिबास-ख़िज़ाँ ज़ेवतन किया और कोहो हामूं अशजारो-अनहार से यह बहिश्त अंगेज़ सदायें आने लगीं कि हमारा आशिक़े-ज़ार हमारा दिलदादा व शेफ्ता हम पर मरने वाला आज हमसे जुदा हो गया। मुद्दत से जिसके वस्ल के वास्ते तड़पते थे आया, और दुरोज़ा खुशी बख्श कर फिर चलता फिरता नज़र आया। हाय वस्ल के मज़े को भी अच्छी तरह से महसूस न किया था कि हिज्र का सदमा-ए-जाँकाह हमारी जान के वास्ते मौजूद होगया। ख़ैर माशूकों का मातम बीनो चुका तो आरज़ी होता ही है सँगीन दिल नेचर ने तो चार माह ही के बाद अपनी मातमी पोशाक को फाड़ कर फिर अपना लिबासे-बहार ज़ेवतन किया, वही सुर्ख़ २ फूल, हरे पत्ते और लहलहाती हुई सब्ज़ी के परदों में छिप २ कर अपनी छवि दिखाने लगी, और आशिकों के दिलों में जोशे-जुनूँ पैदा करने लगी। मगर राम, प्यारे राम! तू ही तो बता कि उन दिलों की ख़िज़ाँ को कौन सी बहार दूर कर सकती है जो जानते हैं कि तेरा वजूद तेरे मुल्क की मुल्की व दीनी ख़िज़ाँ के वास्ते बहार था। काश कि मौजूदा बहिश्त अंगेज़ मुल्की वाक़ियात पर तेरी दूरबीन और वसी नज़र पड़ती तो तू हमारे

खुशगवार—उत्तम सुगंध आलमे-असफल, मुअत्तर—सुगंधित, खुशगो—अच्छी वाणी वाली, जेवतन किया—पहन लिया, कोहो हामूं—पर्वत मैदान, अशजारो अनहार—वृक्ष और नहरें, बहिश्त अंगेज—स्वर्ग लाने वाली, सदायें—आवाजें, शेफ्ता—प्रीतम, वस्ल—मिलाप, हिज्र—जुदायगी, सदमा-ए जांकाह—भारी चोट, मातम—शोक इत्यादि, आरजी—थोड़े काल तक, सँगीन—पत्थर चित, वसी—विशाल दृष्टि।

महजूँ और मुर्दा दिलों को अपनी ज़ाती खुश नफ़सी से मसीहावार ताज़ा रूह बख़्शता और हमको अपनी खँदाँ पेशानी से ओ३म् गाकर बतलाता किः—

"चुनीं न माँद चुनाँ नीज़ हम न ख्वाहद माँद"

अर्थः—जब ऐसा नहीं रहा तो वैसा भी आगे न रहेगा।

कुछ उम्मीदें पैदा होतीं, कुछ तबियतें बढ़तीं। इधर तेरी ज़िन्दा मिसाल, खुद ईसार-नफ़्सी, खुशी और मुहब्बते-आलम का सबक़ हर रोज़ ताज़ा पढ़ा कर मायूसी से बचाती और कहती।

गुलगीर सिफ़त जो सर तराशेंगे अदू।
नाम अपना भी मिस्ल शम्मा-ए-रोशन होगा॥

राम की जुदाई का सदमा, उसकी सोहबते-पाक और तलक़ीने हाल से जो दुनिया को फ़ैज़ पहुँच रहा था, उसका रँज, अपने मुल्क की हालत और मौजूदा तकालीफ़ और बद बख़्ती-जिस ने बड़े २ लायक़ मुदब्बिरों के दिलों को स्याह और बड़े २ इन्साफ़ पसन्दों, आक़िलों को बेवकूफ़ और ग़ैर इन्साफ़ पसन्द बना दिया—और ग़रज़ ऐसे ही बहुत से ख्यालाते-परेशाँ कुनी में मबहूत था कि आलमे-ख्वाब में गुज़र हो गया तो कुछ नये उक़दे खुलने शुरू हुये और देखा कि एक चमने-वसी में सैर कर रहा हूं; इस फूल को देखता हूं, उस फूल को देखता हूं, मगर तबियत सेर नहीं होती कि यकायक सामने नज़र उठा कर देखता हूं, तो मालूम होता है, वही मुसकराता हुआ चेहरा, ओ३म् गाते हुए लब, वही

महजूँ—टूटे हुए वा चांदवत्त, ईसार नफ़्सी—आत्म-त्याग, गुलगीर—बत्ती काटने की कैंची, अदू—शत्रु, शम्मा—रौशन दीपक, सोहबते—सत्संग, तलक़ीने—मौजूदह उपदेश, बदबख़्ती—दुर्भाग्य, मबहूत—भौंचक्का, विस्मित, वसी—विशाल बाग, सेर—तृप्त।

मुहब्बत भरी निगाहें, वही मिले हुये हाथ जो हर कसोनाकस को इत्तहाद और यक जहती वहदहुला-शरीक का सबक़ पढ़ाते हैं, कसरत में वहदत दिखाते हैं, वही सुनहिरी चश्मा साफ़ रँग जिस में राम सबके वजूदे-असली को देखता था, तख़्ते-नूर पर जल्वा-कुनां सामने मौजूद है, सरे-तसलीम ख़म होगया, पाक क़दमों को बोसा देकर अपनी ज़िन्दगी को पाक किया और चश्म-ज़दन में अपने आप को प्यारे राम के आग़ोश में पाया। एक हिंस, एक मुसकराहट, एक लब के इशारे से तमाम कुलफ़तें दूर होगईं, और तमाम आलाम ख़ैर बाद कह गये, उम्मीद का खुशरू चेहरा सामने नज़र आने लगा, क्योंकि राम ने अपने दहिन मुबारिक से फ़रमायाः— "क्यों जी मौत की चाहत को इतनी जल्दी भूल गये, राम को कौन मार सकता है, मैं तुम्हारे साथ हूं, मैं तुम में मौजूद हूं, पूर्ण व नारायण वग़ैरा सब मेरे ही तो वजूद हैं। मायूसी को हरगिज़ जगह न दो। तकालीफ़ को मरदाना वार बरदाश्त करना इन्सान को बजुर्ग बनाता है, और जिस क़ौम में वह पैदा होता है उस के लिये वह बाइसे-फख होता है। इतना कहने के बाद स्वामी राम फ़ार्सी के मुफ़स्सिले ज़ैल अशआर मस्त हो २ कर पढ़ने लगे।

ता सुरमा सिफ़त सूदह न गर्दी तहे-संग।
हर गिज़ ब सफा चशमे-निगारे न रसी॥ १॥
ता शाना सिफ़त सर न निही दर तहे-अर्रा।
हरगिज़ ब सरे-जुल्फ़े-निगारे न रसी॥ २॥

कसोनाकस छोटे बड़े वा अच्छे बुरे; इत्तहाद—एकता, मेल; यकजहती—मिलाप, इत्तफ़ाक़; कसरत—अनेक में एक; जल्वा—प्रकाशमान्; चश्म—आँख की पलक; कुलफतें कठिनाइयाँ; आलाम—दुःख; दहिन—मुखारविन्द।

ता हम चू दुरें सुफ्ता न गर्दी बा तार ।
हरगिज़ व वना गोशे-निगारे न रसी ॥ ३ ॥
ता खाक तुरा कूज़ा, न साज़न्द कुलालाँ ।
हरगिज़ व लबे-लाले-निगारे न रसी ॥ ४ ॥
ता हमचू हिना सूदा न गर्दी तहे-संग ।
हरगिज़ व क़फ़े-पाये-निंगारे न रसी ॥ ५ ॥
ता हमचू क़लम सर न निही दर तहे-कारद ।
हरगिज़ व सर अँगुश्ते-निगारे न रसी ॥ ६ ॥

ख़ाक दर चश्मे कि ओ न शनाख़्त हुस्ने ख़्वेश रा ।
मुर्दा आं दिल को वला गरदाँ न शुद दरवेश रा ॥

अर्थः—(१) जब तक ज्ञान रूपी पत्थर के नीचे पिस कर तू (तेरा तुच्छ अहं वा अहंकार) सुरमे के समान न हो जाय, तब तक तेरी पहुंच अपने प्यारे के नेत्रों तक भी नहीं हो सकती।

(२) जब तक ज्ञान रूपी आरह के तले तेरा सिर (अहंकार) रखकर कंघी न बना लिया जाय, तब तक अपने प्यारे के बालों तक पहुंचना असम्भव है।

(३) जब तक मोती के समान तू ज्ञान रूपी तार से न पुरोया जाय, तब तक प्यारे के कान तक भी तू कभी नहीं पहुंच सकता।

(४) जब तक ज्ञानवान् रूपी कुम्हार तेरी मिट्टी को कूट कूट कर प्याला नहीं बना लेते, तब तक तू प्यारे के ओष्ट तक भी कभी नहीं पहुंच सकता।

(५) जब तक ज्ञान रूपी चक्की के तले तू पिस कर मेंहदी नहीं हो लेता, तब तक प्यारे के पाओं भी तुझे नसीब नहीं होते।

(६) जब तक ज्ञान रूपी छुरे के नीचे तू अपने अहंकार रूपी सिर को रखकर क़लम (लेखनी) नहीं बना लेता, तब तक तू अपने प्यारे की उङ्गलियों तक भी नहीं पहुंच सकता।

उस आँख में मट्टी पड़े कि जो अपने सौन्दर्य को नहीं पहचान सकती। और वह दिल मुर्दा है कि जो तत्ववेत्ताओं के ऊपर न्योछावर नहीं हुआ।

हमारा ख्याल है और इस में शक नहीं कि यह दुरुस्त ख्याल है कि आफ़ताब के क़रीब होने से हम चौंधिया जाते हैं, और उस में जिस क़दर रोशनी हो उसका अँदाज़ा नहीं कर सकते। राम बेशक दुनिया के उन चन्द महान्-पुरुषों में से है जिन के ज़िम्मे दुनिया की बहिबूदी और बेहतरी का अहम काम लगाया जाता है। अज़मत का अँदाज़ा उसके गाँव वाले बहुत कम और उस के मुल्क वाले बहुत कुछ ज्यादा कर सकते हैं। मगर राम की पूरी २ अज़मत कई सदियों के बाद मालूम होगी जिस वक़्त आइन्दगान को मालूम होगा कि उस की मिसाल सदियों से पैदा नहीं हुई, और उस की तालीमो-तलक़ीन ओ मौजूदा ज़माने के कई सदी आगे है अफ़ज़ल और बरतर है और इसूल इन्सानात दुनिया की वह हालत है जिससे बेहतर बहिमों-ख्याल में न आसके।"

लार्ड-दि-चल-मोनाहदी का
गुल्ला और अमोल जत्था
हरगोविन्द प्रशाद निगम

उपरोक्त विषय का प्रभाव मेरे दिल पर कुछ कम न पड़ा था क्योंकि उस से पहले हिन्दुस्तानी अख़बार लखनऊ में बाबू गंगा प्रसाद वर्मा का लिखा हुआ आर्टीकल जिस में

बहिबूदी—भलाई, अहम—भारी भविष्य में, अज़मत—बड़ाई बुज़ुर्गी, आइन्दगान—आनेवालों, तालीमो—सिखाना बुझाना, अफ़ज़ल—सर्वोत्तम, बरतर—श्रेष्ठ।

स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के गँगा की लहरों में अन्तर्ध्यान होने का हृदय विदारक समाचार पढ़कर मुझे वैराग्य सा उत्पन्न होगया और घरबार छोड़ कर जँगलों की हवा खाने को मजबूर होने लगा था। मनही मन में ध्यान करके मैं श्री गँगा जी से अपने अमूल्य रत्न रामतीर्थ के दर्शनों के लिये मचल रहा था, गोया अपने नेत्रों से आँसुओं की गँगा बहा रहा था। ऐसी दशा में मुझे कई बार स्वामी जी के दर्शन हुए और ख्याली मूर्त्ति अपने अमृतमय उपदेशों से मुझे तस्सली देती रही। इस वैराग्य दशा में जो २ घटनायें उपस्थित हुईं, मैं क़ागज़ के टुकड़ों पर उनको लिखता गया, बल्कि रामोपदेश जो इस छोटे से ट्रैक्ट में है मैं समझता हूं कि प्यारे राम ही का मनोहर उपदेश है, मेरा नहीं।

कभी २ अचेत होकर मैं अपनी लेखनी और पुस्तकें फेंक कर खुली हवा में टहिलने लगता। बड़ी कठिनता से मैं अपना चित्त सावधान कर सका और इस वैराग्य और समाधि की हालत में जो कुछ मैं सँग्रह कर सका, वही गंजीना-ए-जवाहराते-सखुन (यानी पद्य में स्वामी रामतीर्थ महाराज का जीवन चरित्र) के नाम से मजमुआ-तसनीफ़ाते-गुहर के साथ शामिल कर दिया जिसे मैं अब अलग करके रामतीर्थ ग्रंथावली में प्रकाशित करा रहा हूँ। सन्मार्ग तक पहुँचने और सीढ़ी बसाढ़ी पदार्पण करते हुये कष्ट पूर्ण पथ को किसी गुरू व नेता की सहायता के बिना तै करना कोई आसान काम नहीं, परन्तु सच्चे जिज्ञासू को ऐसे गुरू व नेता का मिल जाना बुद्धि से परे नहीं।

जो आया सामने बस रख दिया सर उसके चरणों पर।
मुहब्बत में न समझा फ़र्क़ कुछ मैं दोस्तो-दुशमन में॥

कुछ दिनों कुल्लियाते-राम व राम वर्षा पढ़ २ कर आनन्द उठाता और अपना दिल बहिलाता रहा। कभी लेखनी उठाकर प्रिय राम से पत्र व्यवहार करने का विचार करता और वायु को अपना दूत ठहराता।

लाई है ए नसीमे-सहर क्या पयामे-राम।
किस रँग में है मेरा दिलआरामे-नाम राम॥

कभी बेल बूटों और बनके पत्तियों से राम का पता पूँछता।

बाग़ की चिड़ियों! उड़के बता दो कहाँ है प्यारा राम।
बनके दरख़्तों मिलके बतादो कहाँ है प्यारा राम॥

भगवत लीला नेचर के मनोहर दृश्य और प्रत्येक पुष्प-लता में राम का जलवा दिखाकर मुझे प्रसन्न करने लगी, यहां तक कि एक रात्रि को जब मैं पुस्तक देख रहा था मुझे अक्षरों में राम ही राम की मोहनी मूर्ति मुसकराते लबों से ओ३म् उच्चारण करते हुए दिखाई देने लगी। वास्तव में यह दृश्य सोती वा नींदी दशा में दिखाई दिया था जबकि पुस्तक देखते २ आंख एक दम लग गई थी। स्वपनावस्था में कई बार मुझे स्वामी जी के दर्शन कभी उपदेश करते हुये और कभी आँखों से आँसू बहाते हुए मिले। और जब कभी सोते २ मेरी आँख खुल गई, तो अपने आप को भी रोता हुआ पाया।

जब कभी मेरा दिल घबराता, तो "लाइफ़ आफ़ स्वामी रामतीर्थ एन्ड हिज़ टीचिंगस" नाम पुस्तक जो मुझे अत्यन्त प्रिय थी पढ़ने लगता। कभी २ कुछ ऐसी भागवत-लीला होती कि देवोपमा वृद्ध पुरुष भगुआ वस्त्र धारण किये हुए

नसीमे-सहर—प्रातः समीर, पयामे-राम—राम का संदेश, जलवा – दर्शन।

मुझे शिक्षा देते दिखाई पड़े, और कभी २ मुझे अपना शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु मेरे हृदय में पहिले से ही स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का प्रेम था, इस लिये सबकी सुनता और अपनी धुनता रहा। हार्दिक प्रेम और आकर्षण की यह दशा थी कि कभी २ इच्छा-शक्ति और मन-संकल्प से प्रत्येक वस्तु स्वयमेव उपस्थित हो जाती और यही प्रभाव था कि एक योगेश्वर ने अपने एक अधिकारी शिष्य को मुझे शिष्य बनाने के लिये परीक्षार्थ मेरे पास भेजा जिन्हों ने और शिष्यों के होते हुए भी मुझे अपना शिष्य बनाने की उपदेश द्वारा इच्छा प्रकट की और कहा कि वग़ैर गुरू के मोक्ष मिलना असम्भव है, इस लिये तुमको शिष्य होना चाहिये। परन्तु मैं स्वामी रामतीर्थ जी महाराज को प्रथम ही अपना गुरू और नेता स्वीकार कर चुका था। मैंने कुछ ध्यान न दिया, यहां तक कि योगेश्वर ने स्वयं दर्शन देकर मेरी तमाम शंकाओं का समाधान कर दिया, और यद्यपि मैं उनको निर्भयता और ढिठाई से मिला, तथापि उन्हों ने प्रेम पूर्वक मेरी हर बात को सुना और पवित्र गीता के सिद्धान्तानुसार आचरण करने और गृहस्थ आश्रम को यथाविधि पालन करने को मुख्य कर्तव्य बतलाते हुए प्रति दिन थोड़ा थोड़ा अभ्यास करने की शिक्षा दी। सितम्बर सन् १८९८ ई० से सन् १९१० ई० तक आडिट आफ़िस आर० के० रेलवे में थोड़े से वेतन पर मैं साधारण क्लर्क रहा। १२ वर्ष तक बड़े परिश्रम से अपना काम करता रहा। दिन भर दफ़्तर में काम करना और कभी २ काम की अधिकता से मकान पर दो २ घँटे काम करने के अतिरिक्त कुछ समय कविता करने को बचाता रहा। और जैसा २ राम-प्रेम हृदय में जोश मारता गया, तैसा २ कविता उनके उपदेशों के रूप में बहती रही

और इसी तरह उनके जीवन चरित्र पर भी लेखनी ने अपना प्रवाह जारी किया जिस से यह छोटा सा संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित उपदेशों के तैयार होगया, जो आज मैं अति प्रेम भरे हृदय से राम प्यारों की भेंट कर रहा हूं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(गुहर)

ॐ

प्रेम का तोहफ़ा ! प्रेम का तोहफ़ा !! प्रेम का तोहफ़ा !!!

हक़ीक़ी लाज़वाल बे लौस

और

सच्ची मुहब्बत की यादगार में

एक नज़्म मुसद्दस

चमक जा हुस्न की दिलकश अदा में राम की मूरत।
चमक कर बर्क़ दिखलादे घटा में राम की मूरत॥
चमक आईनये-दिल की जिला में राम की मूरत।
चमक जा ओ३म् की दिलकश सदा में राम की मूरत॥
दिखादे एक झलक ऐ गंगे माई ! राम प्यारे की।
गुसाईं भक्त हीरानन्द के आँखों के तारे की॥१॥

निहाँ नज़रों से है क्यों आज ऐ महवे-ख़ुद आराई।
दरख़्शाँ है किधर ऐ आफ़्ताबे-अक़्ल ओ दानाई॥
कहाँ है आज तू ओ ख़ुद तमाशा ख़ुद तमाशाई।
है किस दुनियाँ में आज ऐ प्रेम अरु उल्फ़त के शैदाई॥
है मुश्ताक़ आँखें देखें, प्यारी मस्ताना अदायें हम।
सुनें एकबार फिर ओ३म् ओ३म् की दिलकश सदायें हम॥२॥

कहाँ ओ३म् ओ३म् की धुन में है तू ऐ राम मतवाला।
कहाँ तू झूमता फिरता है पीकर प्रेम का प्याला॥

हुस्न—सौन्दर्य, बर्क़—बिजली, सदा—ध्वनि, हीरानन्द—स्वामी राम के पिता का नाम था, निहाँ—छिपा हुआ, महवे-ख़ुद—अपनी महिमा में मस्त या मग्न, दरख़्शाँ—रौशन, शैदाई—प्रेम पर लट्टू, सदायें—ध्वनियां।

हर एक दिल में फिर अपने तेज का फैला दे उजियाला।
दिखादे राम मुखड़ा प्यारा दिल को मोहने वाला॥
बहा दे शान्ती और प्रेम का दरिया मेरे दिल में।
दिखादे जल्वा ए हुस्ने-हक़ीक़ी पहिली मंज़िल में॥ ३॥

नसीमे-दश्त ! किसको ढूँढ़ती फिरती है तू बन में।
सबा फिरती है किसकी जुस्तजू में सेहने-गुलशन में॥
लहिरिया प्रेम की ओढ़े मगन लहरें हैं क्यों मन में।
छुपा है मेरा मोती राम गँगा ! तेरे दामन में॥
पहाड़ों की चटानें कर रही हैं शोर वादी में।
है अबतक प्यारा स्वामी रामतीरथ जल समाधी में॥ ४॥

मुजस्सिम प्रेम की ओ जागती मूरत कहाँ है तू।
हक़ीक़ी हुस्न की ओ मन-चली मूरत कहाँ है तू॥
वह हँसती मुस्कराती मोहनी मूरत कहाँ है तू।
रियाज़ी, फ़िलसफी, वेदान्ती मूरत कहाँ है तू॥
दुई का क़ाश पर्दा सामने से जल्द हट जाये।
तेरे दर्शन से भारत वर्ष की काया पलट जाये॥ ५॥

महक फूलों में फिर ऐ गुलबुने-बागे-सखुन दानी।
चहक शाखों पे फिर ऐ बुलबुले-मस्ते-खुशइलहानी॥
सुना एक बार फिर कानों को दिलकश राग हक़्क़ानी।
लुटा दिल खोल कर गञ्जीना-ए-असरारे-रूहानी॥

जल्वा—असली सौन्दर्य का दर्शन, नसीमे-दश्त—बन-पवन, सबा—पर्वो की वायु, सेहने-गुलशन—बाग के आंगन (चौक), दामन—पल्ला, अर्थात् तेरे भीतर, वादी—जंगल, रियाज़ी—गणित वेत्ता की, फिलसफी—तत्त्व-वेत्ता की, काश—ईश्वर करे कि, महक—सुगंधि दे, गुलबुने-बागे—तत्त्व-वेताओं के बाग के वृक्ष, खुशइलहानी—मधुर स्वर से गाने वाली, हक़्क़ानी—परमात्मा का भजन, गञ्जीना-ए-असरारे-रूहानी—आध्यात्मिक रहस्यों का खजाना।

महा पुरुष ऐसे दुनिया में बड़े कामों को आते हैं।
मिटाते आप को हैं और लाखों को बनाते हैं॥
सदा मजजूब की बड़ की तरह अकसर लगाते हैं।
हक़ीक़त का वह सच्चा रासता सब को दिखाते हैं॥
जो अहले-इल्म हैं उनकी नसीहत पर अमल करते।
मुअम्मे-अक़्ल से दुनिया के हैं पल भर में हल करते॥१४॥

समा जा राम तू नज़रों में बनकर आँख का तारा।
करें हम मुस्कराते चाँद से मुखड़े का नज़्ज़ारा॥
हमारा राम, प्यारा राम, भारत वर्ष का प्यारा।
बहा दे जल्द दिल में शान्ती और प्रेम की धारा॥
दिखादे अपनी मतवाली अदा ऐ राम! प्यारे फिर।
मनाये राम खुशियाँ सुबह की रावी किनारे फिर॥१५॥

तमन्ना है कि फिर भारत में तुझको जल्वहगर देखें।
तेरा मुखड़ा चमकता चाँद सा हरदम गुहर देखें॥
तेरा जीवन चरित्र ए राम तीरथ उम्र भर देखें।
तेरी तैंतीस साला ज़िन्दगी को एक नज़र देखें॥
ज़रा सी ज़िन्दगी में कर गया सब काम दुनियाँ में।
रहेगा राम अबद तक तेरा रौशन नाम दुनिया में॥ १६॥

(गुहर लखनवी)

———:-#-:———
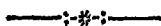
मुअम्मे-अक़्ल—बुद्धि की घुंडियां, तमन्ना—इच्छा, जल्वहगर—प्रकाशमान्, विद्यमान्।

आलमे-महवीयत, तसव्वुर और रामतीर्थ जी के दर्शन।

आत्म-अनुभव और राम की सदा।

था सरूर आँखों में जिस गुल का वह गुल मैं ही तो हूँ।
ढूँढती बुलबुल थी जिस गुल को वह गुल मैं ही तो हूँ॥१॥
गुल से बुलबुल कब जुदा बुलबुल से गुल कब है जुदा।
गुल में बू और नाला-ए-बुलबुल में गुल मैं ही तो हूँ॥२॥
इश्क़ मैं हूं, राग मैं हूं, हुस्न मैं हूं, धुन हूं मैं।
शमा मैं, परवाना मैं, महफ़िल मैं, गुल मैं ही तो हूँ॥३॥
जिसको तू समझा था मैं, ग़फ़लत से वह मैं ही तो था।
तू न था मैं था, जुज़ो *कुल में वह कुल मैं ही तो हूं॥४॥
राम वन में, राम तन में, राम मन में, ए गुहर!।
राम घट २ में है व्यापक कोहो-पुल में ही तो हूं॥१॥

भारत की †मुक़द्दस सर ज़मीं मेरा पवित्रत स्थान है। गँगा यमुना और सरस्वती की धारा में हूं। ऊँचे २ पर्वतों पर मेरी ही कुदरत के नज़ारे हैं। पहाड़ों की सरवफ़लक चोटियाँ मेरी बुलन्दी का इज़हार करती हैं। मैं हवा बनकर सब्ज़ा ज़ार को लहलहाता हूं। बाग़ों में बहार मैं हूं, ‡नसीम खुश गवार मैं हूं। मैं पहाड़ों को उलट सकता हूं, ख्यालों को पलट सकता हूं, चाँद और सूरज मेरी दोनों आँखें हैं। मैं सब में हूं और सब मुझ से हैं।

बन के हवा मैं बाग़ में दिल के गुञ्चे नये खिलाता हूं।
गुल में महिक कर गुञ्चों में बसकर रँग अरु रूप दिखाता हूं॥
सोते हुओं को भारत के मैं छींटे दे २ जगाता हूं।
निर्मल नित्य हो ध्यान मेरा कर आतम ज्ञान सिखाता हूं॥

---

* व्यष्टि समष्टि, † पवित्र, ‡ मंद पवन।

साँची प्रीत रीत नहीं जाने मिथ्या जगत बुझाई ॥
जस करनी तस भरनी रामा शिक्षा वेदन गाई।
कलयुग सतयुग द्वापर त्रेता चारों आप बनाई ॥
ब्राह्मण छत्री वैश्य शुद्र सब ब्रह्मा एक रचाई।
ब्रह्म विद्या जब खो बैठे, चार वर्ण हुये भाई ॥
सुर नर मुनि जन भेद न पायो खोज फिरे सौदाई।
उनकी गति भक्तन पहचानी यह देखो प्रभुताई ॥
एक बात कलयुग में उलटी सुध बुध मत बिसराई।
सत्य को त्याग असत्य मन बैठे उलटी गँग बहाई ॥
मिथ्या भेष आप नहीं बूझे मिथ्या जगत बताई।
साँची कविता भेद न पायो झूठी कविता गाई।
झूँठे नाविल पढ़ २ कर सब साँची खोज गँवाई ॥
जिन खोई तिन खोज बहाई जिन खोजी तिन पाई ॥
अपनी ओर न आप निहारें और न निन्दे भाई।
नैन चतुर चितवैं जग मिथ्या आपन देत बड़ाई ॥
स्वामी राम तीरथ योगेश्वर भारत गुहर जगाई।
साँची प्रीत रीत पहचानी प्रेम झलक दे साई ॥

आलमे-ख्याल।

गंगा माई तेरी अविज्ञ लहरों में प्यारा स्वामी राम तीरथ तरंगें कर रहा है, तू ने मेरा मोती अपने दामन में छुपा रक्खा है। स्वामी राम तीरथ ओ३म् के दिलकश नारों से पहाड़ों को गुँजा रहा है, नहीं २ वह मुझे पुकार रहा है, सुनो २ गँगा जी की रवानी में यह प्रेम भरी गुन गुनाती *सदा कहाँ से आ रही है, यह प्यारे स्वामी राम तीरथ की सदा है जो निहायत दिलकश लहजे में सुनाई दे रही है।

* आवाज

"सौ २ गोते गिन २ मार। गँगे रानी॥
तेरियाँ लहराँ राम असवार। गँगे रानी॥"

अहा-हा-यह वही प्रेम भरी राम की सदा है-गँगे रानी! मेरा प्यारा स्वामी राम तीरथ कहाँ है, तेरी लेहरों ने उसे अपने दामन में छुपा रक्खा है, मुझे अपने प्यारे स्वामी राम के दर्शन करा दे। नहीं तो मैं उलटी गँगा वहाता हूं और अपने प्रेम के आँसूओं की धारा और तेरे जल की धारा एक बनाता हूँ।

हर गँगे की निरमल धार। गँगे रानी॥
हर लहरी हर गंगा पार। गँगे रानी॥
निरमल चित हो देख वहार। गँगे रानी॥
हर की महमा अपरमपार। गँगे रानी॥
नैइया बीच पड़ी मंझधार। गँगे रानी॥
राम लगाये बेड़ा पार। गँगे रानी॥

प्रेम भरी गंगा की लहरो! आबे-रवाँ के आँचल में प्यारे राम को छुपाने वाली गंगा की पवित्र और पाक लहरो! मुझे तुम से वैसा ही प्रेम है जैसा कि तुम से प्यारे राम को था। जिस राम ने अपने पाक चरणों से गंगा बहाई, वही प्यारा राम मेरी आँखों से गँगा बहा रहा है, और मैं उसी निर्मल धारा में स्नान कर गोते लगा २ कर उभर रहा हूं। प्रेम भरी लहरो! मुझे तुम से प्रेम है, प्रेमी पुरुषों की निगाह में गंगा माई सत्य की सहाई हैं, दुष्ट और पापी जन भी अपने *अक़ीदे और तेरे नाम के सहारे सँसार सागर से तर जाते हैं। अगर मुझ पर एक दम के लिये भी सत्य सवार है, तो मैं अपने राम के दर्शन बग़ैर तुझे भी शान्त चित न रहने दूँगा। अपने ख़्यालात की रवानी के साथ तुझे भी बहाऊँगा।

* विश्वास।

देख में भँग घुटना तैय्यार करता हूं और अपनी तरंगों-अपने ख़्याल रूपी गंगा की लहरों में तरंग करता हूं॥

हरगँगे की निर्मल धारा, गँगा का घट छोटा (टेक)
आसन बाँधूँ, धुनी रमाऊँ, साँई घर क्या टोटा॥
शिव को अपने वश में करलूँ, हाथ में लेकर लोटा।
राम के अपने दर्शन करलूँ, सत्य का बाँध लँगोटा॥हर०
राम नाम की बूटी पीकर ऐसा लगाऊँ घोटा।
राग द्वेष का घुटना कर दूँ, परख खरा अरु खोटा॥हर०
हरद्वारा स्थान बनाऊँ, हर मूरत हर मन्दर।
तन में, मन में, बन में, घन में, रण में बाहर अन्दर॥ हर०.
हर धूनी में राम रमाऊँ, लँका कर दूँ छुप्पर।
मैं हूं स्वामी राम का सेवक, महावीर सा बानर॥ हर०
दुनिया, तुझको नाच नचाऊँ, नाचूँ मैं नट बन कर।
राम को अपने घट में ढूँढूँ, ओ३म् का जप कर मंत्र॥ हर०
गंगा ऐसी डुबकी लगाऊँ, सतधारा में रम कर।
निस दिन पल छिन मुझे भजे तू तन्सन् ओ३म् हरीहर॥हर०

दर्श-अभिलाषी आलम-ख़्याल में श्री गंगा जी में कूदना चाहता है। गंगा की प्रेम भरी लहरें जवाब में थपेड़े मार २ कर पीछे हटने को *ज़ुबाने-हाल से कह रही हैं:-अरे मतवाले क्यों दीवाना हुआ है। जा, जा. क्यों जान खोने आया है? तेरा राम कहाँ, वह तो हमारा राम है। तेरा राम नहीं, क्यों सिर्री सौदाई हुआ है? राम का शैदाई बना है? गंगा में तेरी हड्डियों का पता भी न लगेगा। गंगा माई से अपने राम को भला क्या लेगा। पीछे हट, गंगा को तेरी हड्डियाँ भी क़बूल नहीं।

* गरज़।

(एक सन्नाटे का आलम छा जाता है और गंगा की लहरें खामोश हो जाती हैं)

(दर्शन अभिलाषी)

प्रेम भरी गंगा ! हमारा मज़हब भी इश्क़ है। हम इश्क़ के बन्दे हैं, मज़हब है जिनूँ अपना। हमारा राम, ज़िन्दह जावैद राम प्रेम भरी लहरों पर सवार ओ३म् २ के दिलकश नारे लगा रहा है, नहीं वह मुझे पुकार रहा है। मैं सुन रहा हूं। मेरे दिल में एक चिंगारी भड़क रही है, देख कहीं शोला बन कर जल की लहरों में आग न भड़का दे, गंगा माई देख बार बार तुझे सुनाता हूं, सुन और एक दिलकश राग सुना कर तुझे अपनाता हूं।

(भजन)

घिस २ चन्दन घिस २ चन्दन माथे तिलक जमाऊँ।
राम गले का हरवा बन कर गँगे ! तुझे पिन्हाऊँ॥
योगी जती सती संन्यासी किस को सीस नवाऊँ।
मीठी वाणी और रसना से सरस्वती गुण गाऊँ॥
राम को स्वामी युग का समझ कर नारद-शिक्षा गाऊँ।
सबको अपने बस में करके भक्ती का पद पाऊँ॥
बादल रूपी क्रोध घटा पर वह बिजली कड़काऊँ।
तिल समान अहंकार के पर्वत भक्ति बल मैं दिखाऊँ॥
गंगा यमुना सरस्वती की धारा एक बनाऊँ।
सरजू जल में लहरें लेकर घट में राम रमाऊँ॥
कलयुग को फिर सतयुग करदूं भक्ति के बल जाऊँ।
सत उपदेश की गँगा बनकर भारत में लहराऊँ॥
स्वामी राम का सेवक बनकर भारत भक्त कहाऊँ।
तारे बनकर ज़र्रे भारत भूमी के चमकाऊँ॥

———०———

गंगे माई! राम झलक दिखला दे,कहना मान।
कलयुग जीतूँ, सतयुग जीतूँ, द्वापर त्रेता जान।
शिवजी का मैं धनुआ तोड़ूँ, रावन का अभिमान॥ गंगे०॥

(हालते-सरूर में)

राम झलक बन श्याम घटा में नाचूँ मोरन बोली।
धूप छाओं की उड़ा लहरिया खेलूँ आँख मिचोली॥
मुरली बनकर श्यामके मुख की बाजूँ गत अनमोली।
घन में वन में दामिन दमकूँ रण में अरगन बोली॥
वृन्दावन की कुञ्जन में मैं बनकर राधा भोली।
प्रेम चुनरिया बनकर भीजूँ शिव की छीनूँ झोली॥
राग रँग में रँग उड़ाऊँ, धनुष रँग भर झोली।
फगुआ गाऊँ, श्याम मनाऊँ, ब्रज में खेलूँ होली॥

——o——

आधी रात के सोने वालो! चौंको, भोर भयो।
राम झलक बन श्याम घटा में मुरला कूक गयो॥
नींद के माते सोओगे कबतक सूरज उदय भयो।
ओ३म् २ शब्द अरगन धुन ले अनहद साज सज्यो॥
तनमनधन सब कृष्ण अर्पण कर स्वामीराम भज्यो।

गँगा माई जवाब में खुश होकर गोद पसारती है और एक और नायाब गुहर को अपने गोद में लिया चाहती है। एक महर्षि के दर्शन होते हैं और दर्श-अभिलाषी की ओर से गँगा की लहर का रुख वह फेर देता है और मुख़ातिब होकर ज्ञान उपदेश से ख्यालात को पलट देता है।

(राम उपदेश)

क़ौल दुन्या से मुहब्बत मगर हारा है।
मुझ को मालूम हुआ राम का तू प्यारा है॥

तुझको मरग़ूब अगर राम का नज़्ज़ारा है।
देख हियां प्रेम की बहती हुई एक धारा है॥
डूबकर ज्ञान की गँगा में उभर अरु कर ध्यान।
रामके चरणोंका आईना-ए-दिलमें धर ध्यान॥१॥

देख दीवाना न बन, होश में आ, और सँभल।
कुलजुमे-इश्क़ में हो जाये न बेड़ा जल थल॥
जाये दलदल में न धोके से कहीं पाऊँ फिसल।
बज़्मे-आलम में न मच जाये यकायक हलचल॥
कहीं तू बहरे-तसव्वुफ़ में न ग़ोते खा जाय।
राम बदनाम हो तुझसे ही न खुद उभरा जाय॥ २॥

ढूँढता फिरता है तू दश्तो-बियाबाँ में किसे।
देखता रहता है, उफ़, ख़्वाबे परेशां में किसे॥
है सबक़ रोज़ नया हिफ़्ज़ दबिस्ताँ में किसे।
तमगये फ़ज़्ल मिला बज़्मे सखुनदाँ में किसे॥
नामो-शोहरत की हविस छोड़ दे दीवाना न बन।
देख जलजायेगा इस शमा पै, परवाना न बन॥ ३॥

आतिशे-शौक़ को इस दरजा न भड़का दिलमें।
बर्क़ों बाराँ के शरारों को न कड़का दिलमें॥
हो न आलम कहीं मजनूंकी बड़का दिलमें।
डर है हो जाय न पैदा कहीं धड़का दिलमें॥
भटके सहारा में न तू क़ैस कहीं बन बन कर।
सर न हो कोह के फ़रहाद सा दुशमन बन कर॥४॥

मरग़ूब—पसंद, नज्जारा—दर्शन, कुलजुमे-इश्क—प्रेमसागर, बज्मे-आलम—दुनिया की महफ़िल, बहरे-तसव्वुफ—ज्ञान का सागर, दश्तो-बियाबा—जंगल दबिस्तां—पाठशाला, तमगए-फज्ल—बड़ाई का तमगा (पदक), बर्कों—बिजली, बारां—वर्षा, शरारों—चिंगारियां, कैस—लैली का प्रेमी, फरहाद—शीरीं का प्रेमी।

कौनसी तुझको अदा राम की खुश आई है।
सच बता किस लिये तू राम का शैदाई है॥
राम भक्ती का फ़क़त दिलसे तमन्नाई है।
दर्शनों की तुझे यह चाह यहाँ लाई है॥
पाक उल्फ़त है तो सौ जान से शैदा मैं हूँ।
तेरे ही ज़ुल्फ़ परेशान का सौदा मैं हूँ॥ ५

दिल वह दिल ही नहीं जिस दिलमें नहीं मेरा श्याम।
आँख वह आँख ही नहीं जिसमें नहीं मेरा मुक़ाम॥
लब वह लब ही नहीं जिस लब पे नहीं राम का नाम।
रम रहा राम जो तन मन में है, वह कौन है, राम॥
दूर कर दिल से दुई, तू को मिटा तू न रहे।
राम ही राम रहे, फ़र्क़ सरे-मू न रहे॥ ६॥

पाई है बहरे-हक़ीक़त की किसीने कहीं थाह।
डूब ही जाये कहीं दिलसे न हो दिलको जो राह॥
इश्क़ सादिक़ हो तो मुमकिन है कि हो जाय निबाह।
रोना आता है मुझे देखके हालत तेरी आह॥
याद रख धार पै तलवारों के चलना होगा।
सूरमाँ बनके मिशन से नहीं टलना होगा॥ ७॥

राम सच्चाई की एक शमा पे था परवाना।
क़ैस फ़रहाद की मानिन्द न था दीवाना॥
अपनी ही ज़ुल्फ़ पेचाँ का नहीं था शाना।
बज़्मे-अग़यार में भी था वह नहीं बेगाना॥

खुश—पसन्द, श्याम—स्थित होना, फर्क सरेमू—बाल बराबर अन्तर, बहरे-हकीकत—सत्य के सागर, सादिक—सच्चा प्रेम, मिशन—कर्तव्य, पेचाँ—बलखाई हुई, मुड़ी हुई, बज्मे-अगयार—दुश्मनों की महफिल।

क़ौम और मुल्क को ग़फ़लत से बचाया किसने।
रास्ता बामे-हक़ीक़त का दिखाया किसने ॥ ८ ॥

राम ने धर्म की अज़मत का उठाया बीड़ा।
राम ने मुल्क की ख़िदमत का उठाया बीड़ा ॥
राम ने क़ौमी मुहब्बत का उठाया बीड़ा।
अपने हमवतनों की उलफ़त का उठाया बीड़ा ॥
पक्ष हो जिसमें, कहीं राम का उपदेश नहीं।
राम में नाम को भी राग नहीं द्वेष नहीं ॥ ९ ॥

अक़्लो दानिश में मुझे देख, कि यकता मैं हूं।
अद्‌ब-इख़लाक़ का बहता हुआ दरिया मैं हूं ॥
हुस्न और इश्क़ के जज़बात का नक़शा मैं हूं।
देख आईनये-दिल में तेरे बैठा मैं हूं ॥
चश्मे-हक़बीं से मुझे देख कि मैं दूर नहीं।
बल्कि ख़ुद आँख मिलाना तुझे मन्ज़ूर नहीं ॥१०॥

है अभी इश्क़ हक़ीक़त का पिया जाम कहाँ।
रट पपीहे की तरह पी के एवज़ राम कहाँ ॥
जिस का आग़ाज़ नहीं उसका है अन्जाम कहाँ।
हस्ती-ओ-इल्म हूं मसती हूं मेरा नाम कहाँ ॥
मनज़िले-इश्क़े-मजाज़ी अभी ते करना है।
डूब मर, चाह में, नाकाम अगर मरना है ॥११॥

देख तो राम ने क्या काम किया भारत में।
ज़िन्दा जावेद रहा, नाम किया भारत में ॥

बामे-हक़ीक़त—सत्य के कोठे, अज़मत—बड़ाई, हमवतनों—देशवासियों अक़्लो दानिश—समझ बूझ, चश्मे-हक़बीं—सत्य को देखने वाले चक्षु, इश्क़-हक़ीक़त—सत्य के प्रेम, जाम—प्याला, आग़ाज—आरंभ, अन्जाम—इति, इश्क़े-मजाज़ी—सांसारिक प्रेम, जिन्दा जावेद—अमर।

मेहर को तावये-अहकाम किया भारत में।
सिक्कये-इल्मो-अमल आम किया भारत में॥
वेद और शास्त्र की अज़मत का बजाया डँका।
सारी क़ौमों में मुहब्बत का बजाया डँका॥१२॥

कौन सम्बन्धी है कर गौर तू क्या अपना है।
क्या यह जिस्म अपना है, हरगिज़ नहीं, फिर किसका है॥
जिस्म क़ायम नहीं खुद ज़ात पे गर, फिर क्या है।
और क़ायम है तो बस ज़ात ही का जल्वा है॥
अपना आप आत्मा है जिसकी यह सब शक्ती है।
जिस्म साये के सिवा और नहीं कुछ भी है॥१३॥

साफ़ अगर आईनये-दिल है तो कर नज़्ज़ारा।
आत्मा आप है और आप ही अपना प्यारा॥
नाम अरु रूप से मन्सूब है न्यारा न्यारा।
आत्मा एक है, प्रकाश है, जिसका सारा॥
नाम अरु रूप भी जुज़ ज़ात है कर गौर नहीं।
देख तू और नहीं, और मैं हूँ और नहीं॥१४॥

क़तरये-अश्क समुन्दर में गुहर किसका है।
जल्वये-कौनो-मकाँ पेशे-नज़र किसका है॥
राम हर रोम में व्यापक है तो डर किसका है।
देख वीरानये दिलमें तेरे घर किसका है॥
दिन हूं मैं, रात हूं मैं, सुबह हूं मैं, शाम हूं मैं।
मूहँ से कह राम हूं मैं, राम हूं मैं, राम हूं मैं॥१५॥

---

१ मेहर – सूर्य, तावये-अहकाम – आज्ञाकारी, सिक्कये-इल्मो अमल – ज्ञान और व्यवहार का राज्य, आम – प्रचार, अजमत – बडाई, जल्वा – प्रकाश, जुज – अंश, कतरये-अश्क – आंसू का बूंद, गुहर – मोती, जल्वयेकौनो-मकाँ – हर स्थान में प्रकाश (ज्योति), पेशे-नजर – आँख के सामने।